आधुनिक

उद्योग और व्यवसाय की दुनिया

डा० कन्हैयालाल सहल एम. ए., पी. एच डी.
अध्यक्ष, हिन्दी-संस्कृत-विभाग
बिड़ला आर्ट्‌स कालेज, पिलानी

प्रकाशक
राजस्थान पुस्तक मन्दिर
जयपुर

मूल्य १॥)

प्रकाशक—
राजस्थान पुस्तक मन्दिर
जयपुर

१९५५

मुद्रक—
राजस्थान प्रिंटिंग वर्क्स
जयपुर

विषय-सूची

विषय		पृष्ठ
१.	हेनरी फोर्ड	१
२.	जमसेतजी नसरवानजी टाटा	११
३	घनश्यामदास बिडला	२१
४.	लाला हरकिशनलाल	३३
५.	एलफ्रेड मार्शल	४३
६	गैइतानो मार्जोटो	५३
७.	जान मेनार्ड कीन्स	६२
८	पुरुषार्थ के पुजारी लक्ष्मणराव किर्लोस्कर	७२
९.	*कैसे बना करोड़पति (वेस्युमल बैपुरे)*	७९
१०.	प्रो० के० टी० शाह	८५
११.	भोर के नगर सेठ नाना साहेब थोपटे	८९
१२.	चिन्तामणि देशमुख	९७
१३.	हैरी फर्ग्यूसन	१०१
१४.	प्लास्टिक के प्रथम भारतीय कारखानेदार श्री बनारसे	१०५
१५.	जे० सी० मॅरट	१२०
१६.	टी० टी० कृष्णमाचारी	१२३
१७	जे० सी० कुमारप्पा	१४५

आमुख

प्रस्तुत पुस्तक में देश विदेश के उद्योग-पतियों, व्यवसायियों तथा अर्थ शास्त्रियों आदि के जीवन-चरित दिये गये हैं। सामान्यतः लोगों की यह धारणा रहती है कि जो व्यक्ति धन-कुबेर होते हैं, वे धन को केवल धन के लिए चाहने लगते हैं अथवा व्यक्तिगत सुख-भोग के लिए वे अपनी अतुल सम्पत्ति का दुरुपयोग करने लगते हैं किन्तु इन जीवन-चरितों को पढ़ कर पाठकों की यह धारणा अवश्य भ्रान्त और निर्मूल सिद्ध होगी। इस पुस्तक में जिन कर्मठ व्यक्तियों के चरित प्रस्तुत किये गये हैं, उन्होंने व्यवसाय, कठिन परिश्रम साहसिक वृत्ति आदि अनेक स्पृहणीय गुणों के कारण विपुल धन-राशि का उपार्जन अवश्य किया किन्तु उनमें से प्रत्येक का उद्देश्य अपने देश को समृद्ध बनाने; जनता की स्थिति को सुधारने तथा लोगों के जीवन को सुखमय बनाने का तथा देश की तत्कालीन औद्योगिक और आर्थिक समस्याओं को सुलझाने का रहा है। धन उनके लिए साध्य कभी नहीं रहा, केवल साधन रहा है।

इस पुस्तक के अध्ययन से यह भी स्पष्ट है कि साधन हीन व्यक्ति भी अपनी प्रतिभा और साहसिकता के बल पर असंख्य साधनों का स्वामी बन कर जनता की जीवन पद्धति में क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित कर सकता है। यह विचार बड़ा स्फूर्तिदायक और उत्साहवर्धक है।

द्वितीय पञ्चवर्षीय योजना पर आज हमारे देश में विचार-विमर्श चल रहा है। भविष्य में भारत का औद्योगीकरण होने वाला है जिसके लिए हमारे देश के प्रतिभाशाली व्यक्तियों का योगदान अपेक्षित होगा। आर्थिक और औद्योगिक जिन सामयिक समस्याओं की चर्चा प्रस्तुत पुस्तक में हुई है, उन्हें पढ़-सुन कर हमारे छात्रों का ध्यान अवश्य ही इन ज्वलन्त

समस्याओं की ओर जायगा और न केवल वे इन पर विचार करने लगेंगे बल्कि आवश्यकता पड़ने पर इन समस्याओं को सुलझाने में अपने भावी जीवन में वे अपना सक्रिय सहयोग भी दे सकेंगे, ऐसी आशा है।

जिन सज्जनों की रचनाओं का समावेश इस पुस्तक में हुआ है उनके प्रति लेखक अपना आभार प्रदर्शित करता है। इस पुस्तक के लिए सामग्री जुटाने में बिड़ला सेंट्रल लाइब्रेरी पिलानी के पुस्तकाध्यक्ष श्री वर्माजी ने मेरी बड़ी सहायता की है जिसके लिए कृतज्ञता प्रकट करना मैं अपना परम कर्तव्य समझता हूँ।

पिलानी
२ अक्टूबर १९५५

कन्हैयालाल सहल

हेनरी फोर्ड

(सन् १८६३-१९४७)

"केवल दोष न ढूँढो, उपाय करो—शिकायत तो कोई कर सकता है।"

—हेनरी फोर्ड

जीवन-वृत्त

हेनरी फोर्ड का जन्म ३० जुलाई सन् १८६३ में मिचिगन (अमेरिका) में हुआ। १५ वर्ष की अवस्था तक उन्होंने स्कूल की शिक्षा प्राप्त की। स्कूल के अतिरिक्त उनका जो समय मिलता, उसमें वे अपने खेत पर काम किया करते थे। यन्त्र-विद्या में प्रारम्भ से ही उनकी बड़ी रुचि थी। सन् १८७६ में सम्भवतः जन्म दिवस के उपलक्ष में हेनरी को किसी ने एक घड़ी भेंट की। उन्होंने घड़ी को खोला, पुर्जे-पुर्जे को अलग किया और उसे फिर उसे ज्यों का त्यों कर दिया। इसके दो वर्ष बाद तो घड़ी सुधारने के काम में उन्होंने पूरी दक्षता प्राप्त कर ली। कोई घड़ी कितनी भी खराब हो गई हो, उसे सुधार देना उनके बाएँ हाथ का खेल था। अड़ोस पड़ोस के बहुत से लोग उनके पास घड़ी सुधरवाने के लिए आते और वे उनसे बिना कुछ लिये ही उनकी घड़ियाँ ठीक कर दिया करते थे। इस प्रकार मुफ्त काम करते देखकर पिता ने पुत्र को आड़े हाथों लिया किन्तु हेनरी के दिल में यह बात जमी हुई थी कि

पड़ोसियों की सहायता करनी चाहिए और इस प्रकार के छोटे-मोटे कामों के लिये उनसे कोई पारिश्रमिक नहीं लेना चाहिए। इसलिए घड़ी सुधारने का काम वे छिपकर करने लगे ताकि उन्हें पिता के क्रोध का शिकार न बनना पड़े।

अतिरिक्त समय में केवल खेत पर काम करने से हनरी का जी नहीं भरता था। इसलिए जब वे १६ वर्ष के हुए, उन्होंने डेट्रायट (Detroit) में यन्त्रों का काम सीखना शुरू कर दिया। एक वर्ष बाद वे ऐंजिन बनाने का काम सीखने लगे।

मोटर गाड़ी बनाने के सम्बन्ध में हेनरी को बड़ा संघर्ष करना पड़ा। अनेक बार प्रयोग कर लेने के बाद पहली गाड़ी सन् १८६२ में बन कर तैयार हुई।

कहा जाता है कि एक बार जब मकान-मालिक हनरी से किराया वसूल करने के लिए आया तो उसने देखा कि घर की दीवार टूट-फूट कर नीचे गिर गई है। यह देख कर वह आपे से बाहर हो गया। इस पर फोर्ड ने कहा कि मैं तुम्हारी दीवार फिर ज्यों की त्यों बनवा कर तैयार करवा दूँगा। किन्तु मकान-मालिक ने पूछा—'तुमने ऐसा किया ही क्यों ?' फोर्ड ने उत्तर दिया कि जो मोटर मैंने बना कर तैयार की है, मैं देखना चाहता था कि वह दौड़ सकती है अथवा नहीं ? आश्चर्य चकित होकर मकान मालिक बोल उठा—'क्या तुम्हारी मोटर वास्तव में दौड़ी ?' फोर्ड ने जब मकान-मालिक को अपनी गाड़ी दिखलाई तो उसका क्रोध हवा हो गया।

अनेक वर्षो के संघर्ष और प्रयोग के बाद हेनरी ने मोटर निर्माण के कार्य को व्यवसाय के रूप में अपना लिया। पहले तो उन्हें इस काम में बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा किन्तु सन् १९०३ में उन्होंने फोर्ड मोटर कम्पनी को संगठित किया और वे इसके अध्यक्ष बन गये। आगे चलकर दुनिया की सबसे बड़ी मोटर कम्पनी के रूप में इसने ख्याति प्राप्त की।

सन् १९१४ में हेनरी ने अपने कर्मचारियों के लिये एक करोड़ से लेकर ३ करोड़ डालर तक के लाभ के वितरण की घोषणा की।

हेनरी-फोर्ड शान्ति के बड़े प्रेमी थे। जब प्रथम विश्व-युद्ध प्रारम्भ हुआ तो शान्ति समर्थकों के एक दल को लेकर उन्होंने जहाज द्वारा इस उद्देश्य से यात्रा की थी कि युद्ध में संलग्न राष्ट्रों को वे समझा बुझाकर युद्ध बन्द कर देने के लिए राजी कर लें।

हेनरी फोर्ड ने एक म्यूजियम और अस्पताल भी बनवाया। सन् १९२६ में मिशिगन विश्वविद्यालय ने उन्हें ऐंजीनियरिंग के डाक्टर की उपाधि से विभूषित किया तथा सन् १९३५ में कॉलगेट विश्वविद्यालय ने उन्हें एल. एल डी. की उपाधि प्रदान की।

फोर्ड के जीवन-काल में उनकी कम्पनी से लाखों मोटर गाड़ियाँ तैयार होकर निकलती थी जो दुनियाँ भर में लोक-प्रिय होती चली गईं। कुछ लोगों की दृष्टि में तो हेनरी विश्व

वे सबसे अधिक धनी व्यक्ति माने जाते थे। ७ अप्रैल सन् १९४७ को हेनरी फोर्ड का देहान्त हुआ। उनकी निम्नलिखित कृतियां प्रसिद्ध हैं—

१ My life and work (१९२५)
२ To day and to morrow (१९२६)
३ Moving Forward (१९३१)

व्यक्तित्व

हेनरी पर अपनी माता मैरी फोर्ड का बड़ा प्रभाव पड़ा। मैरी सच्चे अर्थ में गृह-स्वामिनी थी, वह घर का शासन करती थी। घर को सब प्रकार सुखी बनाना उसका लक्ष्य था। वह कहा करती थी कि यदि घर में हम सुखी न रहे तो कहीं भी सुखी नहीं रह सकेंगे। खेल-कूद और हँसी-खुशी को वह बुरा नहीं समझती थी किन्तु उसकी मान्यता थी कि पहले अपना कर्त्तव्य पालन कर लेने पर ही कोई व्यक्ति खेल-कूद का अधिकारी बन सकता है।

मैरी की एक बड़ी विशेषता यह थी कि वह अपने बच्चों को भली भांति समझती थी। जो माता पिता अपने बच्चों को बिना समझे उनके साथ यथेच्छ व्यवहार करते रहते हैं, वे उनके चरित्र निर्माण में सहायक नहीं हो सकते।

हेनरी जिन दिनों पढ़ने के लिए स्कूल जाया करते थे, माता उनको 'लंच' के लिए ऐसे खाद्य पदार्थ दिया करती थी जो स्वास्थ्य के लिए हानिकर न हों। किन्तु स्कूल के अन्य

बहुत से छात्र 'लंच के समय बहुत से स्वादिष्ट व्यंजनों का आस्वादन किया करते थे। एक दिन हेनरी का जी भी ऐसे व्यंजनों के लिए ललचाया और उन्होंने स्कूल के किसी छात्र से स्वादिष्ट व्यंजन प्राप्त कर लिये। किन्तु हेनरी तो ऐसे व्यंजनों के आदी थे नहीं, इसलिए उनके पेट में गड़बड़ होने लगी। माता को जब इस बात का पता चला तो उसने हेनरी को भविष्य में ऐसा करने से मना कर दिया। माता का अपने बच्चे पर इतना प्रभाव था कि उसकी किसी बात को टाल देना हेनरी के लिए सम्भव न था। मैरी भी जब किसी बात का निश्चय कर लेती थी तो उसे पूरा किये बिना नहीं छोड़ती थी।

हेनरी की माता अपने बच्चों को शारीरिक दण्ड कभी नहीं देती थी। वह चाहती थी कि बच्चे से यदि कभी कोई अपराध हो जाय तो उसे अपने अपराध पर लज्जित होना चाहिए और भविष्य में ऐसा न करने की प्रतिज्ञा करनी चाहिए। एक बार किसी बात पर फोर्ड ने झूठ बोल दी। इस पर माता ने उनको बुरा भला नहीं कहा किन्तु दिन भर उनके साथ इस प्रकार उदासीनता का व्यवहार किया गया जिससे हेनरी को इस बात की प्रतीति हो गई कि झूठ बोलना एक बड़ा भारी अपराध है।

मैरी फोर्ड को स्वच्छता और व्यवस्था बड़ी पसन्द थी। हेनरी पर भी माता के इन दोनों गुणों की छाप स्पष्ट दिखलाई पड़ती है। हेनरी का तो कहना था कि जिस साँचे में माता ने

मेरा जीवन ढाल दिया था, उसी प्रकार का जीवन में ग्रन्त तक बिताता रहा हूँ ।

हेनरी का व्यक्तित्व ग्रसाधारण था। उनके विचारों में बडी मौलिकता थी। पुस्तकें पढने में उनका दिल नही लगता था। ग्रधिक शिक्षित व्यक्तियो से बातचीत करने में भी उनको बेचैनी का ग्रनुभव होता था। दूसरो से बातचीत न कर, ग्रपने ग्राप से बातचीत करने में उनको विशेष ग्रानन्द मिलता था। वे स्वय विचार करने में बडा समय लगाते थे। जब वे विचारमग्न होते तो कई घण्टो तक जगल में चले जाया करते थे। विचार करने के लिए एकान्त उनको बडा पसन्द था। ग्रनेक बार किसी गाँव की ग्रोर जाकर वे घुडसवारी करते थे ग्रौर किसी से बिना एक शब्द कहे, ग्रपने विचारों में डूबे रहते थे। मौलिक विचारक होने के कारण ही वे पुस्तकों का कोई महत्त्व नही देते थे। उनका कहना था कि पुस्तकें मौलिक विचार के लिए बाधक सिद्ध होती है। ग्रधिक पुस्तकें पढने को वे ग्राधुनिक युग की एक बीमारी समझते थे। उनकी दृष्टि में शिक्षित व्यक्ति वही था जो विचार कर सकता हो, विश्व-विद्यालय की ग्रनेक उपाधियाँ प्राप्त कर लेने से ही किसी को शिक्षित नही कहा जा सकता।

धन इक्ट्ठा करने से उन्हें घृणा थी। वे चाहते थे कि धन को ऐसे उपयोगी कामों में लगाया जाय जिससे उत्पादन बढे ग्रौर लोगो का जीवन ग्रधिक सुखमय हो। किसी को दान देना भी वे ग्रच्छा नही समझते थे। वे लोगों को काम

में लगा देना चाहते थे जिससे किसी को दान अथवा किसी प्रकार की भिक्षा की आवश्यकता ही न पड़े। ऐश-आराम में धन का उड़ा देना भी वे बहुत बुरा समझते थे। वे कहा करते थे कि जब मेरी व्यक्तिगत आवश्यकताएँ पूरी हो गई तो क्या मैं अपने शेष धन को लुटा दूँ? यदि मैं ऐसा करने लगूँ तो मुझे बड़ी मानसिक यन्त्रणा होगी और मैं समझता हूँ, कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं करना चाहता। किन्तु व्यक्तिगत लाभ के रूप में हेनरी ने जितनी सम्पत्ति का उपार्जन किया, उतनी सम्पत्ति शायद ही किसी ने पैदा की होगी। इस सम्पत्ति का उपयोग वे अधिकाधिक फॅक्ट्रियाँ खोलने तथा अन्य औद्योगिक विकास के कार्यों में किया करते थे। उनकी प्रबलतम इच्छा यह थी कि लोगों का जीवन समृद्धिशाली बने। उनका कहना था कि श्रमजीवी को कम से कम ५ डालर प्रति दिन मिलने चाहिए अन्यथा न तो उसके शरीर का विकास होगा और न उसके मन का। यदि श्रमजीवी को इससे कम मिला तो वह अपने बच्चों की भी कोई देख-रेख नहीं कर सकेगा। श्रमजीवी को कम से कम इतना अवश्य मिलना चाहिए जिससे उसे जीवन में कुछ रस मिले, अपना भविष्य उसे उज्ज्वल जान पड़े—एक शब्द में कहा जाय तो वह मानवोचित जीवन व्यतीत कर सके। हेनरी के इसी प्रकार के उदार विचारों के कारण उसे औद्योगिकों में सन्त कहा गया है।

फोर्ड की दृष्टि में धन का उद्देश्य आराम नहीं, सेवा के लिए अधिक अवसर प्राप्त करना है। उनका कहना था कि

विलासिता का जीवन व्यतीत करने का किसी को अधिकार नहीं, और न सभ्य समाज में आलसी के लिए ही कोई स्थान है। वस्तुओं के उत्पादन के सम्बन्ध में भी उनके अपने निश्चित विचार थे। फोर्ड नहीं चाहते थे कि द्रव्य, पदार्थ अथवा मनुष्य की शक्ति का किसी प्रकार भी अपव्यय हो। सेवा-भाव को वे प्रमुखता देते थे। इस सम्बन्ध में उनके निम्नलिखित सिद्धान्त उल्लेखनीय हैं.—

१. भूतकाल के प्रति आदर-भाव हो और भविष्य के प्रति किसी प्रकार का भय न हो। जो समय बीत चुका है, जो अनुभव हमें हुए हैं—उनके आधार पर हम उन्नति के पथ पर और भी आगे बढ सकते हैं।

२. प्रतियोगिता से किसी भी प्रकार भयभीत होने की आवश्यकता नहीं जो सबसे अच्छी वस्तु तैयार कर सकता है, उसे अवश्य ऐसा करने का अवसर मिलना चाहिए, अन्यथा दूसरे के हाथ से व्यापार छीन कर हम अपने व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति में लग जायेंगे।

३. यह सच है कि व्यापार में लाभ न हो तो व्यापार आगे नहीं बढ सकता। और लाभ होने में बुराई भी क्या है ? किन्तु हमारा कर्त्तव्य यह होना चाहिए कि हम सेवा-वृत्ति को पहला स्थान दें और लाभ को दूसरा।

४. सस्ते से सस्ते दामों में वस्तुओं को सुलभ करना और लोगों के जीवन को सुखी बनाना हमारा ध्येय होना चाहिए। सट्टे और जुए से हमें बचना चाहिए।

प्रत्येक व्यापारी धन कमाने की दौड में आगे रहना चाहता था किन्तु फोर्ड को यह बात पसन्द नहीं थी। उनकी दृष्टि में व्यापार धनोपार्जन का साधन नहीं, सेवा का साधन होना चाहिए। फोर्ड ने अपनी जीवनी में बतलाया है कि हमसे कोई गाड़ी खरीदता तो हमारा निरन्तर यह प्रयत्न रहता था कि हम उसकी अधिक से अधिक सेवा कर सकें। यदि उसकी गाड़ी में कहीं टूट-फूट हो जाती तो उसको सुधार कर दुरुस्त कर देना हम अपना कर्त्तव्य समझते थे।

प्रथम विश्वयुद्ध के पहले 'फोर्ड' ने जितनी लोक-प्रियता प्राप्त की, उतनी किसी दूसरी 'कार' ने नहीं। प्रेसीडेंट विलसन तक ने 'मॉडल टी' खरीदा था।

श्रमजीवियों के लिए भी फोर्ड मोटर कम्पनी ने जो कुछ किया, वह अमेरिका के औद्योगिक इतिहास में अभूतपूर्व था। यह घोषणा कर दी गई कि श्रमजीवियों को अब केवल ८ घण्टे प्रति दिन काम करना होगा और ५ डालर के हिसाब से उनको दैनिक वेतन मिला करेगा। उद्योगपतियों, श्रमिक-नेताओं, समाज शास्त्रियों, मंत्रियों तथा राजनीतिज्ञों, सभी ने इस घोषणा का एक स्वर से स्वागत किया। सन् १६१४ और उसके कुछ वर्षों बाद तक फोर्ड कम्पनी में काम करना एक गर्व और सौभाग्य की वस्तु समझी जाने लगी।

फोर्ड स्वयं काम करने में विश्वास करते थे। वे अपना बहुत सा समय और शक्ति काम करने में दूसरों को काम करते हुए देखने में तथा काम के बारे में सोचने में लगाते थे।

मान को वे विश्व की आधार-शिला मानते थे। वे इस बात में विश्वास करते थे कि किसी वस्तु मे हमेशा सुधार करने की गुंजाइश रहती है। हम मंजिल पर पहुँच गये है, अब हमें आगे बढने की आवश्यकता नही है, इस प्रकार की नीति के वे विरुद्ध थे। निरन्तर प्रयोग, परिवर्तन तथा विकास—फोर्ड कम्पनी के तीन आधारभूत सिद्धान्त थे। इन सिद्धान्तो को कार्य रूप में परिणित करते रहने के कारण ही इस कम्पनी ने अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर ली। जब पाँच डालर की योजना काम मे आई तो इस कम्पनी में उन लोगों को भी रोजगार मिला जो विकलांग थे, जिनके हाथ-पैर नही थे अथवा जिनकी दृष्टि जाती रही थी।

फोर्ड में अभिमान की मात्रा नही थी। वह बकवद मे नहीं जाते थे, न किसी प्रकार के वाद-विवाद में ही भाग लेते थे। उनका प्रमुख उद्देश्य था काम करना और दुनियाँ को सुखी बनाना। जब जब विश्व के कर्मठ उद्योगपतियो की चर्चा होगी, हेनरी फोर्ड का नाम आदर और सम्मान के साथ लिया जायगा।

जमसेतजी नसरवानजी टाटा

(सन् १८३९-१९०४)

जीवन-वृत्त

जमसेतजी टाटा का जन्म बडोदा राज्य के नवसारी कस्बे मे एक प्रतिष्ठित किन्तु निर्धन कुल मे सन् १८३९ में हुआ। बचपन में पारसियो की धार्मिक शिक्षा उन्हें प्राप्त हुई और मानसिक गणित का भी अच्छा अभ्यास उन्होने किया। १३ वर्ष की अवस्था मे सन् १८५२ में वे बम्बई भेजे गये जहा सन् १८५८ तक ऐलफिन्स्टन कालेज में उन्होने उच्च शिक्षा प्राप्त की। उनके पिता उन दिनो चीन से व्यापार किया करते थे और कुछ सम्पत्ति भी उन्होंने इकट्ठी कर ली थी। व्यापार की विशेष शिक्षा के लिए जमसेतजी को चीन भेजा गया जहाँ उन्होने व्यापारिक मामलो में दक्षता प्राप्त कर ली। सन् १८६३ ई० में वे बम्बई लौट आये। इसके कुछ अरसे बाद कपडे की मिलो की स्थिति का अध्ययन करने के लिए वे मैंचेस्टर चले गये। वहाँ से वापिस आने के बाद उन्होंने नागपुर में 'ऐम्प्रेस मिल' चलाई। साहस और अध्यवसाय इन दो गुणो के कारण उन्हे इस कार्य में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। बबई प्रेसीडेंसो की सबसे बडी मिल 'धरमसी' को भी उन्होंने १२½ लाख रुपये में खरीद लिया जिसका नया नाम

रखा गया 'स्वदेशी' किन्तु इस मिल को सुसगठित और व्यवस्थित करने मे उन्हे भीषण कठिनाइयो का सामना करना पडा। यह टाटा जैसे साहसी व्यक्ति का ही काम था कि वे इस बिगडी हुई मिल को भी सुधार सके।

भारतीय विश्वविद्यालयो के जो ग्रेजुएट यूरोप में जाकर शिक्षा प्राप्त करने के लिए उत्सुक थे, उनके लिए श्री जमसेतजी ने सन् १८६२ में एक फण्ड की स्थापना की जिससे ऐसे शिक्षार्थियों को आवश्यक शर्तों पर रुपया उधार दिया जा सके। इस योजना से अनेक छात्रो ने लाभ उठाया।

श्री टाटा का विश्वास था कि देश की वैज्ञानिक उन्नति के बिना औद्योगिक विकास में सफलता प्राप्त नहीं हो सकती। इसलिए उनकी बडी इच्छा थी कि मौलिक अन्वेषण के लिए एक वैज्ञानिक सस्था की स्थापना की जाय। इसके लिए उन्होंने स्वय ३० लाख रुपया देने का निश्चय किया। अपने जीवन-काल में तो टाटा अपने इस स्वप्न को चरितार्थ होते हुए न देख सके किन्तु सन् १६११ में बैगलोर में इस सस्था का शिलान्यास हुआ, मैसूर के महाराजा ने सस्था के लिए जमीन दी और सरकार की ओर से अनुदान मिला। श्री जमसेत जी के देहान्त के बाद उनके दोनो पुत्रो ने इस सस्था की स्थापना करवाने में पूरा योग दिया। आज बैंगलोर की "इण्डियन इन्स्टीट्यूट आव् सायस" पूर्वीय देशो की प्रमुख वैज्ञानिक सस्था है।

जिस देश में लोहे और इस्पात का कोई बड़ा कारखाना न हो, वह देश औद्योगिक दृष्टि से कभी भी महान नहीं बन सकता। जमसेतजी का ध्यान भारत की इस कमी की ओर भी गया। उन्होंने इस सम्बन्ध में विशेषज्ञों से सलाह ली और लोहे के सम्बन्ध में जाँच पड़ताल शुरू हुई। यद्यपि जमसेतजी के जीवन काल में यह योजना कार्य रूप में परिणित न हो सकी तथापि उनके पुत्रों ने बड़े साहस और अध्यवसाय के द्वारा अपने पिता के पवित्र संकल्प को पूरा किया। जमशेदपुर का 'टाटा आयरन एण्ड स्टील वर्क्स' आज एशिया का सम्भवत सबसे बड़ा लोहे का कारखाना है।

इसी प्रकार पश्चिमी घाटों के पानी का विद्युतशक्ति के रूप में उपयोग करने का विचार भी जमसेतजी के मस्तिष्क में वर्षों से चक्कर लगा रहा था। इस योजना को भी वे अपने जीते-जी पूरा न कर सके—उनके पुत्रों को ही इस बात का श्रेय है कि सन् १९१० में टाटा हाइड्रो इलेक्ट्रिक कम्पनी की स्थापना हुई और दो करोड़ रुपयों की पूँजी उसी समय कम्पनी के लिए प्राप्त हो गई। इस प्रकार की योजनाओं से देश के औद्योगिक विकास में कितनी सहायता मिलती है, कहने की आवश्यकता नहीं।

हमारे देश के स्वतंत्र होने के बाद प्रथम पंच वर्षीय योजना को यथाशक्ति कार्य का रूप दिया गया और अब दूसरी पंच वर्षीय योजना हमारे सामने आने वाली है किन्तु उस समय जब देश पराधीन था, औद्योगिक विकास की नई नई

योजनाओं की कल्पना करना जमसेतजी जैसे महापुरुष का ही काम था। सन् १९०४ में जमसेतजी के देहावसान होने पर देश का एक बड़ा भारी उद्योगपति उठ गया।

व्यक्तित्व और देन

जमसेतजी स्वयं अपने भाग्य के निर्माता थे। उन्होंने अपने जीवन में चरित्र-बल, आत्म-निर्भरता, साहसिकता और अध्यवसाय द्वारा विशाल धन-राशि का उपार्जन किया किन्तु धनोपार्जन ही उनके जीवन का उद्देश्य नहीं था, जन-जीवन को सुखी और समृद्धिशाली बनाने में ही वे धन की सार्थकता समझते थे। धन उनके लिए साधन मात्र था, साध्य नहीं। बहुत से लोग धन इकट्ठा कर रखते हैं किन्तु उस धन का उपयोग करना नहीं जानते। किन्तु टाटा के लिए ऐसा नहीं कहा जा सकता। जन कल्याणकारी योजनाओं में बड़ी से बड़ी धनराशि लगाने में वे कभी आगा-पीछा नहीं सोचते थे, और चीन, जापान, इंग्लैंड, आस्ट्रेलिया आदि देशों की यात्रा द्वारा जो अनुभव उन्होंने प्राप्त कर लिया था, उसकी सहायता से तथा अपने व्यक्तिगत गुणों के कारण वे अपने काम में हमेशा सफल होते थे, बड़ी से बड़ी कठिनाइयों के सामने भी वे अडिग रहते थे। जीवन में पराजित होकर कन्धा डाल देना तो वे जानते ही न थे। उनके गुणों की सुगन्धि से देश का आंगन आज भी सुगन्धित है।

जमसेतजी सम्मान और उपाधियों के पीछे कभी नहीं पड़े और न सार्वजनिक सभाओं में उन्होंने बड़े बड़े भाषण ही

दिये। उनसे बोलने के लिए कहा जाता तब भी वे सदा इन्कार ही कर देते थे। इसका कारण यह नहीं था कि भाषण वे दे नहीं सकते थे। मित्र-मडली अथवा सामाजिक सभाओं में तो वार्तालाप करने में वे बडे दक्ष थे। बातचीत के सिलसिले में जो सजीव और मनोरंजक उपाख्यान वे सुनाया करते थे, उनसे श्रोताओं को बडा आनन्द मिलता था। ऐसा व्यक्ति यदि सार्वजनिक सभाओं में भाषण भी देने लगता तो निश्चय ही उसके भाषणों से किसी भी सभा की शोभा ही बढती। यह बात भी नहीं थी कि बोलने में उनको किसी प्रकार की घबराहट होती थी। सच तो यह था कि उन्हें काम में विश्वास था, बोलने में नहीं। केवल एक बार अपने परम मित्र सर फीरोजशाह मेहता के आग्रह पर वे एक प्रस्ताव पर बोले थे किन्तु बोले भी क्या, उस प्रस्ताव के अनुमोदन में केवल एक अर्थ—गर्भित और संक्षिप्त वाक्य कहकर उन्होंने अपना आसन ग्रहण कर लिया था।

अपने देश के नवयुवकों के प्रति जमशेदजी के हृदय में बडी सहानुभूति थी। अनेक होनहार व्यक्तियों को उन्होंने आर्थिक सहायता दी थी जिससे वे उन्नति के पथ पर आगे बढते चले गये। केवल पारसी जाति का ही उन्होंने भला किया हो, ऐसी बात नहीं थी। हिन्दू-मुसलमान सभी को उन्होंने लाभ पहुँचाया था जिससे वे बडे लोक-प्रिय हो गये थे।

कुछ ऐसे लोग होते हैं जो आत्म-विज्ञापन के लिए सार्वजनिक कामों में पैसा लगाते हैं, कुछ ऐसे हैं जो आलोचकों और

भिखारियों को दान देकर अपने को धर्मात्मा समझते हैं, कुछ ऐसे विशाल हृदय व्यक्ति भी होते हैं जो पीड़ित मानवता की सहायता करने में अपने धन का सदुपयोग करते हैं किन्तु टाटा की पद्धति इन सबसे भिन्न थी। उन्होंने ऐसे कामों में अपना धन लगाया जिससे देश का वैज्ञानिक और औद्योगिक स्तर ऊँचा हो, जिससे भारतीय जनता को स्थायी सुख और समृद्धि प्राप्त हो सके। केवल दान देने की अपेक्षा, इस प्रकार धन का उपयोग करना सैकड़ों गुणा श्रेयस्कर है।

टाटा ने अपने व्यक्तिगत लाभ की कभी चिन्ता नहीं की। उनकी सी सरलता भी सभी के लिए स्पृहणीय है। जैसा ऊपर कहा गया है, नाम के पीछे वे कभी नहीं पड़े। बंगलोर में जो वैज्ञानिक शोध की संस्था स्थापित हुई, उसके सम्बन्ध में उनका स्पष्ट आदेश था कि संस्था के नामकरण में 'टाटा' का नाम न रहे।

कुछ लोगों का ख्याल है कि श्रीजमसेत जी को सामाजिक और राजनीतिक कार्यों में कोई दिलचस्पी नहीं थी। यह तो मानना ही होगा कि उनका अधिकांश समय देश के वैज्ञानिक और औद्योगिक विकास की योजनाओं में बीता, सामाजिक और राजनैतिक कार्यों में सक्रिय भाग लेने के लिए उनके पास वास्तव में समय का अभाव था। श्री टाटा उन व्यक्तियों में थे जो समय का महत्त्व समझते थे और यह जानते थे कि उनका सबसे अच्छा उपयोग किस प्रकार किया जा सकता है। एक समय एक ही काम हाथ में लिया जाय और फिर उसे

पूरा करने में कोई कसर न छोड़ी जाय, यह उनके जीवन का मूल था। बजट, यातायात के साधन, रेलवे, खेती, सिंचाई, शिक्षा, राजनीति आदि किसी भी विषय पर उनसे बातचीत की जाती तो उनकी जानकारी को देखकर लोग आश्चर्य चकित हुए बिना नहीं रहते थे। यद्यपि उन्होंने अर्थशास्त्र का विधिवत् अध्ययन नहीं किया था तथापि अपने व्यावहारिक अनुभव के आधार पर वे अर्थ-शास्त्र-सम्बन्धी किसी भी विषय पर बड़ी स्पष्टता से बहस कर सकते थे। चीन और जापान के किसानों की वे बड़ी प्रशंसा किया करते थे। सिंचाई और खाद के मामलों में इन दोनों ही देशों के किसान बड़े सतर्क थे। उनकी बड़ी इच्छा थी कि भारतीय किसान भी अन्य देशों के किसानों के मुकाबले में पीछे न रहें।

श्री टाटा को बागवानी का बड़ा शौक था। नवसारी में उन्होंने जो बाग लगाया था, उसकी ख्याति दूर दूर तक फैल गई थी। विदेशों से भी भाँति-भाँति के पौधे मंगवा कर उन्होंने इस बाग में लगवाये थे।

मद्य-निषेध की किसी भी योजना में सहायता देने के लिए श्री जमसेतजी हमेशा तैयार रहते थे। इस प्रकार के कामों में जो आर्थिक सहायता वे देते थे, उसका किसी को पता नहीं चलता था—उनके सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि दाहिने हाथ से जो कुछ वे देते थे, उसका पता बाएँ हाथ को भी नहीं चल पाता था। आत्म-विज्ञापन की भावना से वे कोसों दूर थे। राजनीतिक मामलों में भी उनके विचार बड़े प्रगतिशील थे।

सन् १९१२ में जब लार्ड सिडनम ने श्री टाटा की प्रतिमा का अनावरण किया, उस अवसर पर भाषण देते हुए सर फिरोज शाह मेहता ने कहा था—"आम तौर पर लोग ख्याल करते हैं कि श्री टाटा सार्वजनिक कामों में कोई भाग नहीं लेते थे और न राजनीतिक आन्दोलनों में ही किसी प्रकार की सहायता करते थे किन्तु ऐसा सोचना वास्तव में एक बड़ी भारी भूल है। राजनीतिक आन्दोलनों के सम्बन्ध में जो सहायता, जो परामर्श और जो सहयोग उन्होंने दिया, वह अन्त तक जारी रहा। इसका सबसे बड़ा और क्या प्रमाण हो सकता है कि श्री टाटा 'बोम्बे प्रेसीडेंसी एसोसियेशन' के, जो सूबे की प्रमुख राजनीतिक संस्था थी, संस्थापक सदस्यों में से थे। इतना ही नहीं, उन्होंने अपने पिता तक को इसमें सम्मिलित होने के लिए राजी कर लिया था। राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने वालों के साथ भी उनकी बड़ी सहानुभूति थी और यह तो सभी जानते हैं कि उन्होंने समय समय पर कांग्रेस को आर्थिक सहायता देने में बड़ी उदारता का परिचय दिया था। श्री टाटा की देशभक्ति में किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता। जिस व्यक्ति ने अपने देश के औद्योगिक विकास के लिए तन, मन, धन से प्रयत्न किया, वह अपने देश को राजनीतिक दृष्टि से भी उन्नत देखने के लिए उत्सुक था। अपने देश के गरीबों की दशा का वर्णन करते-करते उनकी आँखें डबडबा आती थीं। जो जो व्यक्ति श्री टाटा के सम्पर्क में आये, वे उनके दृष्टिकोण की उदारता और व्यापकता से प्रभावित हुए बिना नहीं रहे।

नयी नयी योजनाएँ और नये नये विचार श्री टाटा के मस्तिष्क की विशेषता थी। बम्बई के ताजमहल होटल का निर्माण भी उनकी कल्पना-शक्ति की उर्वरता का द्योतक है। यह होटल बम्बई का शृङ्गार है जिसमे व्यावहारिकता के साथ साथ सौन्दर्य का अद्भुत सम्मिश्रण हुआ है।

हमारे देश में प्राय यह देखा जाता है कि एक उद्योगपति एक प्रकार का काम प्रारम्भ करता है तो दूसरे भी उसका अनुकरण करने लगते है। कही एक चीनी की मिल खुलती है तो दूसरे भी चीनी की मिल खोलने की ओर दौड पडते हैं किन्तु श्री जमसेतजी मे इस प्रकार की अनुकरण की प्रवृत्ति नही थी। उनकी समस्त योजनाएँ रचनात्मक और दूरदर्शिता-पूर्ण हुआ करती थी। वे केवल अपने लाभ को ही नही देखते थे, अपने कर्मचारियो के जीवन को सुखी बनाने में भी उनकी पूरी दिलचस्पी थी।

श्री टाटा के नाम का स्मरण हम इसलिए नहीं करते कि उन्होने विपुल धन-राशि एकत्रित की बल्कि इसलिए कि उन्होने उस अतुल धन-सम्पत्ति का उपयोग देश की कल्याणकारी योजनाओं में किया और लोगो के सामने एक अनुकरणीय आदर्श रखा।

बहुत से लोग यह सोचते है कि औद्योगिक विकास की योजनाओ को सफलतापूर्वक गति देना यूरोप और अमेरिका का ही काम है किन्तु श्री टाटा ने जिन योजनाओ को जन्म दिया और उनके पुत्रो ने जिन्हें कार्य का रूप दिया, उससे स्पष्ट है

कि भारतीय भी औद्योगिक विकास के क्षेत्र में अपने देश को समुन्नत बनाने मे बहुत कुछ योग दे सकते है। स्वय श्री टाटा को भारत का औद्योगिक भविष्य उज्ज्वल दिखलाई पडता था।

भारत के औद्योगिक प्रवर्तकों में श्री टाटा का नाम स्वर्णाक्षरो में अङ्कित रहेगा। वे भारत के एक महापुरुष थे, इसमें कोई सन्देह नही। महान् वह है जो अपने युग को प्रभावित करता है और अपनी मृत्यु के बाद भी आगामी पीढी पर अपनी छाप छोड जाता है। श्री जमसेदजी टाटा इन दोनो कसौटियो पर खरे उतरते है, इसलिए उनकी महत्ता के सम्बन्ध में दो मत नही हो सकते। केवल पारसी जाति ही नही, समूचा देश श्री टाटा जैसे उद्योगपति पर गर्व कर सकता है।

श्री घनश्यामदास विड़ला

जीवन-वृत्त

श्री घनश्यामदास विडला का जन्म पिलानी में सन १८६४ मे हुआ। उनके पिता राजा बलदेवदास बिडला, जो आजकल अपनी पति-परायणा पत्नी के साथ बनारस म गगा के तट पर पवित्र जीवन व्यतीत कर रहे है, अत्यन्त सच्चरित्र और उच्च सिद्धान्तो के व्यक्ति है। वालक घनश्यामदास ने उनसे दृढता, सचाई, ईमानदारी, और अध्यवसाय आदि अनेक गुण ग्रहण किये है, अपनी माता से उन्होने दया, सहानुभूति और प्रेम का पाठ पढा है।

जब श्री बिडला का जन्म हुआ, पिलानी मे अग्रेजी शिक्षा की तो बात ही क्या, किसी भी प्रकार की शिक्षा की कोई व्यवस्था न थी। उनके पितामह सेठ शिवनारायणजी बिडला का ध्यान अपने पौत्रो की शिक्षा की ओर गया। इसलिए एक पाठशाला पिलानी में खोली गई जिसमे मास्टर श्रीरामजी को बच्चो को पढाने के लिए नियुक्त किया गया।

पिलानी मे श्री बिडलाजी ने थोडी बहुत अग्रेजी और इतिहास आदि की शिक्षा प्राप्त की। सच तो यह है कि कोई पाठ्-क्रम तो निर्धारित था नही, इसलिए मास्टर श्रीरामजी शिक्षा के सम्बन्ध में यथेच्छ प्रयोग कर रहे थे। छात्र ने अग्रेजी वर्ण-

माला पूरी की नहीं कि वे उसे (Blackie's & Self Culture) पढ़ाने लग जाते थे। इसके अलावा वे छात्रों को मनुस्मृति, शीघ्रबोध, लघुकौमुदी और सत्यार्थ प्रकाश पढ़ाया करते थे। ऐसी परिस्थितियों में स्कूल की वास्तविक शिक्षा तो श्री बिड़लाजी ने मुश्किल से चौथी क्लास तक की प्राप्त की होगी।

सन् १९०६ में श्री बिड़लाजी अपने बड़े भाई रामेश्वर दासजी के साथ बम्बई गये। वहा उन्होंने व्यापार की प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की। इस समय उनके बड़े भाई श्री जुगलकिशोरजी ने कलकत्ते के व्यापारी-समाज में अपनी प्रतिष्ठा जमा रखी थी किन्तु उनकी आय का मुख्य साधन था सट्टा अथवा फाटका। श्री बिड़ला ने देखा कि केवल सट्टे से काम नहीं चल सकता, जब तक उद्योग-धन्धो का आश्रय न लिया जाय, व्यापार को किसी सुदृढ़ और स्थायी आधार-शिला पर प्रतिष्ठित नहीं किया जा सकता। उन दिनों ब्रिटिश साम्राज्यवाद व्यापार पर भी हावी था। अनेक बार श्री बिड़ला जब ब्रिटिश फर्मों में जाते तो उनको केवल इस बिना पर लिफ्ट का प्रयोग नहीं करने दिया जाता था कि वे भारतीय है। कहा जाता है कि एक बार वे किसी ब्रिटिश-उद्योगपति से मिलने गये और उनसे अपनी योजनाओं में सहायता और पथ प्रदर्शन की इच्छा प्रकट की। उस अग्रेज ने श्री बिड़ला की इच्छा को ठुकराते हुए कहा कि व्यापार के भेद बतला कर मैं इस क्षेत्र में प्रतिस्पर्धी उत्पन्न नहीं करना चाहता। श्री बिड़ला को यह बात बड़ी नागवार गुजरी और

उन्होंने स्वय एक बडे व्यापारी बनने का दृढ सकल्प कर लिया। वे अंग्रेजो की रीति-नीति का अध्ययन करने लगे। अंग्रेजो की कार्य कुशलता, स्वच्छता, नियमितता, व्यवस्था, ईमानदारी तथा सेवा-वृत्ति की श्री बिडला पर बडी छाप पडी। भारतीय व्यापार पद्धति में भी इन गुणो के समावेश का वे सतत प्रयत्न करने लग। उन्होंने श्री सुन्दरलालजी को वहीं की व्यापारिक पद्धति का विशेष अध्ययन करने तथा यथाशक्ति अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करने के लिए अमेरिका भेजा। उन्होंने अनेक उद्योग धन्धो की शुरूआत की। विगत ३० वर्षो का इतिहास इस बात का साक्षी है कि किस प्रकार औद्योगिक क्षेत्र में वे महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करते गये है। उनका फर्म बिडला ब्रदर्स लिमिटेड आज देश के सुविख्यात फर्मों में से है।

श्री बिडला लगभग १६ समाचार पत्रो के सचालक है। कातने, और बुनने को मिले, जूट, मोटर कार, बाइसिकल बायलर, कैलिसयम कार्बाइड लिनोलियम, घी, मक्खन, चीनी, कागज, फार्मेस्यूटिक्स, बीमा, बैंकिंग आदि विविध उद्योगो के क्षेत्र में उनका महत्वपूर्ण स्थान है।

प्रारम्भ से ही श्री बिडला गाधीजी के प्रशसको मे रहे हैं। जब गाधीजी सन् १९१५ में दक्षिण अफ्रिका से लौट कर आये, श्री बिडला ने कलकत्ते में उनके स्वागत के उपलक्ष में एक विशाल आयोजन किया। श्री प्रभुदयालजी हिम्मतसिंह के साथ उस समय उन्होंने गाधीजी की गाडी तक खीची

थी। तब से वे निरन्तर गाधीजी के सम्पर्क में आते रहे और महात्माजी के आतिथ्य करने का सौभाग्य भी उन्हीं को मिलता रहा। श्री बिडला ने गाधीजी के जीवन का सभी दृष्टियो से निकट से अध्ययन किया है और 'बापू' नामक प्रसिद्ध पुस्तक के लेखक के रूप में भी आपने बडी ख्याति प्राप्त की है। उक्त पुस्तक का भारतवर्ष की अनेक भाषाओ में अनुवाद हो गया है। गाधीजी की राजनीति, उनके दार्शनिक सिद्धान्त तथा उनके जटिल व्यक्तित्व को भी बिडलाजी ने बडे स्पष्ट और सरल शब्दो में पाठको के सामने रखा है। इस पुस्तक में स्थान स्थान पर उन्होने राजस्थानी शब्दो का भी प्रयोग किया है। श्री महादेव भाई देसाई ने लिखा है कि गाधीजी के व्यक्तित्व का विश्लेषण करते हुए लेखक अपने व्यक्तित्व का भी परिचय दे गया है। श्री बिडलाजी की अपनी विशिष्ट शैली है जो पाठक पर सीधा प्रभाव डालती है हिन्दी के जीवनी साहित्य में इस पुस्तक का महत्वपूर्ण स्थान है।

जब से श्री बिडला गाधीजी के सम्पर्क में आये तभी से वे गाधीजी के भक्त बन गये और उनके नेतृत्व में उनका विश्वास अक्षुण्ण बना रहा। गाधीजी ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त को श्री बिडलाजी ने बहुत अशो तक कार्य का रूप दिया है। स्वय गाधीजी का श्री बिडलाजी पर अटूट विश्वास था। एक विदेशी सवाददाता से उन्होंने कहा था—"अगर मुझे पता लग गया कि बिडला मेरे साथ किसी प्रकार का छल-कपट करते है तो मै उनके यहाँ कभी नही आ सकूँगा। मै

यहाँ इसीलिए ठहहता हूँ कि जो कुछ श्री बिडला कहते हैं, उस पर मुझे विश्वास है। लगभग ३२ वर्षों से मैं उन्हें जानता हूँ और इस अरसे में उनसे किसी प्रकार का धोखा मुझे नहीं हुआ है।"

श्री बिडला बगाल लेजिस्लेटिव कौंसिल और इण्डियन लेजिस्लेटिव असेम्बली के सदस्य भी रह चुके हैं। सन् १९२१ मे आप इण्डियन फिस्कल कमीशन के सदस्य भी मनोनीत किये गये थे। सन् १९२४ में आप कलकत्ते की इण्डियन चेंबर आव् कॉमर्स के सभापति चुने गये। सन् १९२७ में जेनेवा में होने वाली 'इण्टरनेशनल लेबर कान्फरेंस' में मिल-मालिकों की ओर से प्रतिनिधि के रूप में आप सम्मिलित हुए थे। सन् १९२९ में आपने 'फेडरेशन आव् इण्डियन चेंबर्स आव् कॉमर्स एण्ड इण्डस्ट्री' का सभापतित्व किया और 'रायल कमीशन आन लेबर' के सदस्य भी नियुक्त किये गये। सन् १९३१ मे आप दूसरी राउण्ड टेबिल कान्फरेंस मे सम्मिलित हुए थे जिसका आँखों देखा हाल 'डायरी के कुछ पन्ने' नामक उनकी प्रसिद्ध कृति में मिलता है। सन् १९३६-३७ में भारत और ब्रिटेन के व्यापारिक सम्बन्धों के विषय में सलाह देने के लिए भारत सरकारने परामर्श-दाता के रूप में आपकी सेवाओं का लाभ उठाया था।

व्यक्तित्व और देन

श्री बिडलाजी की निर्णय-शक्ति विलक्षण है। विकट परिस्थितियों में भी उन्होंने तात्कालिक निर्णय किये हैं तथापि अपने

निर्णयो पर पश्चात्ताप करने का कोई मौका उनके जीवन में नही आया। मानव-चरित्र को परखने की अद्भुत शक्ति उनमें है। मनुष्यो के सम्बन्ध में जो पहले पहल धारणा उनकी बनती है, वह सही होती है। वे एक अत्यन्त कुशल व्यवस्थापक है। कार्यकर्त्ताओ के प्रशिक्षण में वे विश्वास करते है। वे उन्हें विकास का अवसर देते हुए समय समय पर परामर्श तथा प्रोत्साहन देते रहते है। प्रयत्न करते हुए, सावधान रहते हुए भी यदि कर्मचारियो से द्रव्य अथवा वस्तुओ की क्षति हो जाती है तो वे इसकी परवाह नही करते किन्तु उन्हें किसी प्रकार की लापरवाही अथवा असावधानी पसन्द नही। उनके यहाँ सामान्य शिक्षा-प्राप्त व्यक्ति भी अपने प्रयत्न और योग्यता के बल से ऊँचे ऊँचे पदो पर पहुँच गये है। उनकी मान्यता है कि काम करने वलो में यदि कोई हीरा हो तो उसे उन्नति के लिए पूरा अवसर दिया जाना चाहिए। काम करने में ढिलाई तथा धिमट्टीमन उनकी दृष्टि में हेय है। वैसे स्वभाव के वे बड़े उदार है। उनके साथ किसी का मतभेद हो तो वे बुरा नही मानते। वे किसी के प्रति अपने हृदय में बुरा भाव नही पनपने देते।

जब वे किसी काम के करने का सकल्प कर लेते है तो उसे पूरा किये बिना नही छोडते। उनके यहाँ काम करने वाले व्यक्तियो पर जब कभी कोई मुसीबत आती है तो वे उन्हें हिम्मत बँधाते है। अपने कर्मचारियो पर वे पूर्ण विश्वास करते है। चाहे जितनी विघ्न-बाधाएँ उपस्थित हो जायें,

सार्वजनिक हित के कामों में उनका उत्साह कभी मन्द नहीं पड़ता।

हिन्दू धर्म शास्त्रों में श्री बिडलाजी की बड़ी श्रद्धा है। गीता और तुलसीकृत रामायण का वे नियमित रूप से पारायण करते हैं। वाल्मीकि रामायण, श्रीमद्भागवत, उपनिषद् आदि का भी स्वाध्याय वे करते रहते हैं। एक बार उन्होंने लेखक को लिखा था कि वाल्मीकि रामायण और रामचरितमानस पढ लेने के बाद उनको रामचरित विषयक अन्य आधुनिक काव्य नहीं रुचते।

राष्ट्रीयता आप में कूट-कूट कर भरी है, हिन्दू-मुस्लिम सद्भावना में वे सदा से विश्वास करते आये हैं। कलकत्ते में जब हत्या-काण्ड हुआ तो उन्होंने हिन्दू पाड़ों से मुस्लिम परिवारों की रक्षा करने तथा मुस्लिम मोहल्लों से हिन्दू परिवारों को बचाने में प्राणों की बाजी लगा दी थी। श्री बिडलाजी के प्रभाव से ही उन दिनों पिलानी में पूर्ण शान्ति रही यद्यपि अड़ोस-पड़ोस में साम्प्रदायिक विद्वेष की ज्वाला भभक रही थी।

बड़े से बड़े राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता से लेकर छोटे से छोटे नगण्य व्यक्ति की उन्होंने आर्थिक सहायता की है किन्तु केवल सात्विक दान में उनकी आस्था है, केवल दान के लिए दान वे सामान्यतः नहीं देते। उनकी-सी गुण-ग्राहकता बहुत कम लोगों में मिलेगी।

श्री बिडलाजी बड़े कला-प्रेमी है, लोक-कलाओं में उनकी विशेष अभिरुचि है। पिलानी के चन्द्रभवन में राजस्थान के

ग्रामीण दृश्यों से सबन्धित अनेक सुन्दर चित्र लगे हुए हैं। उनके निवास-स्थान के बाहर-भीतर सर्वत्र उनकी सुरुचि और सौन्दर्य-बोध के दर्शन होते हैं। Miss Margaret Bourke White जब श्री बिडलाजी से दिल्ली में मिली तो उन्होंने कहा कि श्री बिडला का ड्राइंग रूम Tulsa, लदन अथवा लक्षमबर्ग में भी उसी प्रकार सुशोभित हो सकता है क्योंकि रुचि सार्वभौम अथवा अन्तर्राष्ट्रीय है। अपनी ड्रेस, भोजन, फर्नीचर तथा बगीचे के सम्बन्ध में श्री बिडलाजी बड़े सतर्क हैं। दूसरों की भी ढीली-ढाली ड्रेस उन्हें कतई पसन्द नहीं।

श्री बिडलाजी बहुत नियमित जीवन व्यतीत करते हैं। उनके आस पास रहने वाले लोग अपनी-अपनी घड़ियाँ को देख कर कह सकते हैं कि अमुक समय पर श्रीबिडला क्या करते होंगे। जिस समय उन्हें जो काम करना होता है, उस वे अवश्य पूरा कर डालते हैं। काम को पड़े रहने देना उन्हें अच्छा नहीं लगता।

जैसा ऊपर कहा गया है, कठिनाइयाँ अथवा विघ्न बाधाएँ उन्हें अपने पथ से कभी विचलित नहीं कर सकती। पिलानी का जिस रूप में विकास हुआ है, वह श्री बिडलाजी की बड़ी भारी सफलता है। कोई दूसरा व्यक्ति होता तो कठिनाइयों से हार मान बैठता और भारत के किसी दूसरे शहर में आसानी से शिक्षा के केन्द्र की स्थापना कर देता। किन्तु पिलानी में ज्यों ज्यो कठिनाइयाँ आती गई, उनसे लोहा लेने के लिए श्री बिडलाजी का उत्साह भी द्विगुणित होता चला गया।

उनका विश्वास है कि यदि इग्लैण्ड और अमेरिका किसी काम में सफलता प्राप्त कर सकते हैं तो हम क्यो नही कर सकते ? शिक्षा-सम्बन्धी नये-नये प्रयोग करते रहने में उनकी बडी दिलचस्पी है। कितना ही द्रव्य लगे और चाहे कितना ही प्रयत्न करना पडे, यदि कोई योजना कार्य रूप म परिणत करने योग्य है तो वे प्राणपण से उसे कार्य का रूप देने की चेष्टा करते हैं।

श्री बिडलाजी केवल अतुल सम्पत्ति के स्वामी ही नही है, व स्वप्नद्रष्टा भी है किन्तु अन्य स्वप्नद्रष्टाओ और श्री बिडलाजी में एक प्रमुख अतर यह है कि जहाँ बहुत से आदर्शवादी व्यक्ति केवल स्वप्न-लोक में विचरण करते रहते है, श्री बिडलाजी अपने स्वप्नो को यथाथ जगत् की वस्तु बना देते है। कल्पना और वास्तविकता दोनो का सुन्दर सामजस्य उनके चरित्र मे मिलता है। वे बहु-अधीत व्यक्तियों में से हैं, अच्छे वक्ता है और अपने ही ढग से लिखने वाले एक विशिष्ट लेखक है। 'बापू', 'डायरीके कुछ पन्ने', 'बिखरे विचार', 'रुपये की कहानी' The Path to Prosperity, Under the shadow of the Mahatma आदि अनेक पुस्तको के रचयिता के रूप में साहित्य-जगत् में भी श्री बिडलाजी समाहृत हुए है। इसके अतिरिक्त उन्होंने अर्थशास्त्र, वाणिज्य और वित्त आदि अनेक विषयो पर पुस्तिकाएँ लिखी है। व्यापारिक और औद्योगिक कार्यो में इतना व्यस्त रहने हुए भी उन्होंने जिस बौद्धिक और रचनात्मक साहित्य की सृष्टि की है, उससे उनकी बहुमुखी प्रतिभा पर सहज ही प्रकाश पडता है।

जब कभी बिडलाजी पिलानी अथवा उसके बीते हुए दिनो का स्मरण करते है अथवा गाधीजी के विषय में चर्चा करने लगते है तो उनके विवेचन में बडी मार्मिकता आ जाती है जो दूसरो के हृदय को स्पर्श किये बिना नही रहती।

देश-विदेश के विद्वानो, राजनीतिज्ञो और प्रमुख महापुरुषो से उनका सजीव सम्पर्क रहा है। उनके व्यक्तिगत पुस्तकालय में विविध विषयो से सबन्धित पुस्तको का सग्रह है। कला, विज्ञान, वाणिज्य और ज्ञान के अन्य क्षेत्रो में नई से नई विचार-धारा से परिचित रहने का वे पूरा प्रयत्न करते है। उनमें बलवती ज्ञान-पिपासा के दर्शन होते है।

अपनी जन्म-भूमि पिलानी से श्री बिडलाजी को सहज प्रेम है। वे चाहे दिल्ली, कलकत्ता अथवा बम्बई के विशाल-भवनो में रहें, चाहे यू० के० और यू० एस० ए० की यात्रा पर गये हुए हो, पिलानी की स्मृतियाँ उनके मस्तिष्क में चक्कर काटती रहती है। जब कभी वे पिलानी आते है और अपने पुराने कर्मचारियो, किसानो अथवा परिचित व्यक्तियो से कुशल-प्रश्न पूछते है तब उनकी आत्मीयता देखते ही बनती है। आवश्यकता पडने पर वे उनकी सहायता करते है और यथाशक्ति सबके जीवन को प्रमुदित और प्रफुल्लित बनाने का प्रयत्न करते रहते है। श्री बिडलाजी की सहायता इतनी व्यापक है कि वे अपने घोडो और ऊँटो तक को नही भूलते।

श्री बिडला ने नियमबद्धता, आदि अनेक गुण पश्चिमी सभ्यता से ग्रहण किये है। अनेक बार वे यूरोप और अमेरिका

भी हो आये हैं किन्तु उनकी जीवन-पद्धति और उनका दृष्टिकोण मूलत भारतीय हैं। भारत के शास्त्रीय संगीत और नृत्य में वे बडी रुचि रखते है। वे स्वय भी कई शास्त्रीय संगीत गा सकते है। उनके स्वभाव में विनोदप्रियता और वाग्विदग्धता हैं जिसको यथोचित अवसरो पर अभिव्यक्ति होती रहती हैं।

श्री बिडला के जीवन में बडा सयम है। सन १६०५ में केवल ११ वर्ष की अवस्था में आपका पहला विवाह हुआ। पांच वर्ष बाद स्त्री का देहान्त हुआ, कुछ ही समय बाद उनका फिर विवाह हुआ किन्तु कई वर्षो बाद उनकी दूसरी पत्नी का भी स्वर्गवास हो गया। इसके बाद श्री बिडला ने शादी नही की। अपने जीवन में उन्होने जिस सयम का परिचय दिया है, वह दूसरो के लिए भी अनुकरणीय हैं। आज ६१ वर्ष की अवस्था में भी उनमें युवकोचित उत्साह और काम करने की अथक शक्ति के दर्शन होते है।

बिडला एड्यूकेशन ट्रस्ट ने शिक्षा के क्षेत्र में जो कार्य किया है, उससे किसी भी राष्ट्र को गर्व हो सकता है। बिडला कालेज की स्वर्ण-जयन्ती का उद्घाटन करते हुए राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद ने कहा था—

"पिलानी एक मामूली छोटा-सा कस्बा होते हुए भी शिक्षा का एक बडा केन्द्र बन गया है—इस केन्द्र के तैयार करने में विपुल धन बिडला परिवार ने खर्च किया है, पर ऐसा न समझा जाय कि उन्होने केवल धन ही खर्च किया है। उन्होने अपना अनुभव और बुद्धि भी, विशेष करके श्री घनश्यामदासजी

बिड़ला ने, लगाई है, तभी आज हम देख सकते हैं कि जहाँ पहले उनके ही बचपन में अंग्रेजी में आये हुए तार को पढ़ने वाला भी कोई नहीं होता था, वहाँ आज शिक्षा का जाल बिछा हुआ है।"

शिक्षा के कार्य में जो व्यय होता है, उसे श्रीबिड़ला राष्ट्र-निर्माण की सबसे बड़ी पूंजी मानते हैं। उनके मतानुसार इस पूंजी का ब्याज देश की मानसोन्नति, समृद्धि तथा व्यावसायिक वृद्धि के रूप में मिलेगा। इस पूंजी के द्वारा ही मनुष्य को वास्तविक स्वतंत्रता मिलेगी, सामाजिक स्थिरता प्राप्त होगी, खेती, पशु-पालन तथा औद्योगिक क्षेत्र में उत्पादन में मनो-वाछित उन्नति हो सकेगी तथा प्रजातन्त्र गणराज्य शक्तिशाली व ऐश्वर्यवान हो सकेगा।

पिलानी में शिक्षा-कार्य पर चालू खर्च ११ लाख वार्षिक से अधिक है। भवनों तथा विज्ञानशालाओं में १ करोड़ से ऊपर अब तक व्यय हो चुका है।

औद्योगिक और शिक्षा के क्षेत्र में श्री बिड़ला का योगदान चिरस्मरणीय रहेगा, पिलानी का विद्या-विहार उन्हें अमर बनाये रखेगा।

इतना सब कुछ करने पर भी श्री बिड़ला की विनम्रता देखने ही योग्य है। पिलानी के शिक्षा-सम्बन्धी-कार्य के विषय में एक बार उन्होंने लिखा था—

"लोग गणेश बनाते हैं, पर बनता है बन्दर। हमने तो बन्दर ही बनवाया था, पर भगवान की दया से गणेश बन गया।"

लाला हरकिशनलाल

जीवन-वृत्त

पश्चिमी पंजाब में एक छोटा सा कस्बा है Leiah जहाँ लाला हरकिशनलाल ने अपने बचपन के वर्ष बिताये थे। उनका जन्म १३ अप्रैल सन् १८६४ में हुआ। लालाजी के पिता मुल्तान में डिप्टी कमिश्नर के दफ्तर में क्लर्क का काम करते थे किन्तु श्री हरकिशनलाल को ६ वर्ष का ही छोड़कर उनके पिता इस संसार से चल बसे। लालाजी की माता का स्वर्गवास तो, जब वे दो वर्ष के थे, तभी हो चुका था। इस प्रकार बहुत छोटी अवस्था में श्री हरकिशनलाल अनाथ हो गये। किन्तु कठिनाइयों और विघ्न-बाधाओं के समुद्र में वे बड़े धैर्य और साहस के साथ अपने जीवन की नौका को खेते रहे।

लालाजी बचपन से ही बड़े मेधावी थे। पढ़ने में तीव्र-बुद्धि होने के कारण उनको छात्रवृत्तियाँ मिलती रहीं जिससे वे अपना अध्ययन जारी रख सके। उनके भाई तथा उनके चचा किसी अंश में उनकी आर्थिक सहायता करते रहे।

सन् १८८२ में कालेज में भरती होने के उद्देश्य से वे लाहौर के लिए रवाना हुए। उन्होंने कई दिनों तक यात्रा की; कुछ पैदल चले, कुछ गाड़ी का सहारा लिया। दिन में यात्रा करते और रात को पुलों पर अथवा सड़क के किनारे कहीं सो

रहते। Leiah और लाहौर के बीच लगभग २०० मील की दूरी है। जब वे लाहौर पहुँचे तो उन्होंने देखा कि कालेज में भरती होने के लिए जितने रुपयों की आवश्यकता है, उतने रुपये उनके पास नहीं हैं। किन्तु उन्होंने अपने अध्यवसाय और दृढ़ इच्छा शक्ति द्वारा सब प्रकार की कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करली।

बी० ए० परीक्षा मे प्रान्त भर में उनका द्वितीय स्थान रहा और तीन वर्ष तक कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में अध्ययन करने के लिए उनको सरकार से छात्रवृत्ति मिली। कैम्ब्रिज में गणित-शास्त्र का उन्होंने विशेष अध्ययन किया किन्तु अपने बचे हुए समय को वे अर्थ-शास्त्र के अध्ययन और मनन में लगाते थे जिसमें इनकी विशेष अभिरुचि हो गई थी। भारत का ब्रिटेन से जो सम्बन्ध हुआ उसके आर्थिक परिणामों को देखकर लाला जी के मस्तिष्क में उथल पुथल होने लगी।

सन् १८६० में श्री हरकिशनलाल भारत लौट आये। इग्लैण्ड मे रहते हुए उन्होंने पुस्तकें आदि खरीदने के सिलसिले मे कुछ कर्ज ले लिया था। गवर्नमेण्ट कालेज लाहौर में कुछ समय तक वे गणित के स्थानापन्न प्रोफेसर रहे तथा ओरियंटल कालेज लाहौर मे फारसी के प्रोफेसर के रूप में भी वे अपना कुछ समय देते रहे। गणित और अर्थशास्त्र में उन्होंने प्राइवेट ट्यूशन भी की। थोड़े समय में ही उन्होंने इतना रुपया कमा लिया जिससे वे अपना ऋण भी चुका सकें तथा फिर विदेश-यात्रा के लिए रवाना हो सकें।

सन् १८९३ में लालाजी ने डेरा इस्माइलखां में बैरिस्टर के रूप में वकालत करना शुरू किया, किन्तु वकालत करना उनके जीवन का ध्येय नहीं था। वे तो पहले ही अर्थशास्त्र के पथ पर आरूढ हो चुके थे। मार्शल से जो अर्थशास्त्र उन्होंने पढा था उससे वे भली भांति इस निष्कर्ष पर पहुंच गये थे कि अर्थशास्त्र के सिद्धान्त केवल गोष्ठी और विचार-विमर्श के लिए ही नहीं हैं, भारत को आर्थिक समस्याओं का हल ढूंढने में भी उनको लागू किया जा सकता है।

लाला हरकिशनलाल की बडी तीव्र अभिलाषा थी कि भारतवर्ष भी अर्थ और वाणिज्य की दृष्टि से उन्नत हो और दुनियां के समृद्धिशाली देशों में अपना यथोचित स्थान प्राप्त करे।

सन् १८८६ में अपने कुछ मित्रों की सहायता से लालाजी ने भारत इन्स्योरेंस कम्पनी का सूत्रपात किया। यह सबसे पहली अखिल भारतीय बीमा-कम्पनी थी। इसके विधान के अनुसार कोई भी व्यक्ति जो भारतीय न हो, इस कम्पनी के हिस्से नहीं खरीद सकता था। विदेशी कम्पनियों को यह बात बहुत बुरी लगी। किन्तु शेयर और पालिसी बेचना भी कोई आसान काम न था। केवल देश-भक्ति की भावना से ही इस प्रकार के कामों में सफलता नहीं मिल सकती थी किन्तु लालाजी ने कम्पनी को संगठित करने में जी-जान से प्रयत्न किया और अपना बहुत सा समय कम्पनी के काम में वे देते रहे। नतीजा यह हुआ कि कम्पनी सुदृढ आधार पर प्रतिष्ठित हो गई।

भारत इन्स्योरेंस कम्पनी के एक वर्ष पहले पंजाब नेशनल बैंक की स्थापना हुई थी। डाइरेक्टरों के प्रथम बोर्ड पर सरदार दयालसिंह मजीठिया भी थे जो इसके चेयरमैन थे और लाला हरकिशनलाल इसके अवैतनिक मंत्री (आनरेरी सेक्रेटरी) थे। भारत के प्रथम प्रमुख बैंकर के रूप में लालाजी का नाम चिरस्मरणीय रहेगा।

उन दिनों बीमा-कम्पनी और बैंक चलाना कितना मुश्किल था, यह वे ही जान सकते हैं जिन्होंने उस समय के उत्थान-पतन को देखा हो अथवा उस समय की देश की स्थिति से जिनका परिचय रहा हो। सन् १९०६ के बीच निम्नलिखित कम्पनियों का सूत्रपात तथा संगठन किया गया—

१. पंजाब काटन प्रेस कम्पनी, लिमिटेड

२. पीपल्स बैंक आव् इण्डिया लिमिटेड

३. अमृतसर बैंक लिमिटेड

४. कानपुर फ्लोर मिल्स लिमिटेड

५. सेंचरी फ्लोर मिल्स लिमिटेड आदि

किसी की उन्नति करते देख बहुत से लोग उससे ईर्ष्या और द्वेष करने लगते हैं। लालाजी की बढ़ती हुई प्रतिष्ठा और उनके प्रभाव को अनेक लोग बरदाश्त नहीं कर सके। जब लेफ्टीनेंट गवर्नर के साथ लालाजी एक ही हाथी पर सवार दिखलाई पड़ते अथवा मोटर में बैठ कर वे हवाखोरी के लिए निकलते तो बहुत से मनुष्यों के हृदय में ईर्ष्या की

ज्वाला भभक उठती थी। उन दिनों लाहौर में मोटर-कार किसी इक्के-दुक्के व्यक्ति के पास ही देखने को मिलती थी। लालाजी के प्रतिस्पर्धी तांगे बाइसिकल अथवा फिटन का प्रयोग करते थे। लालाजी के पास भी फिटन तो थी किन्तु वह दो के बजाय चार घोड़ा द्वारा खींची जाती थी। कभी कभी लालाजी ऊँट-गाड़ी का भी इस्तेमाल करते थे किन्तु यह ऊँट गाड़ी उस ऊँट गाड़ी से मिलती-जुलती होती थी जिसमें बैठकर लेफ्टिनेंट गवर्नर घुड़ दौड़ देखने जाया करते थे। इस-लिए कुछ लोग इस फिराक में थे कि लालाजी को किसी प्रकार नीचा दिखाया जाय।

सन् १६१३ में इस प्रकार के लक्षण प्रकट होने लगे कि लाला हरकिशनलाल पर मुसीबत आने वाली है। एक पार्टी का तो जन्म ही इस उद्देश्य से हुआ था कि सामान्यतः भार-तीय बैंक और विशेषतः पीपल्स् बैंक का तो दिवाला ही निक-लवा दें। पंजाब में इन्हीं दिनों एक 'आर्य-पत्रिका' नामक समाचार पत्र निकाला गया जिसका लक्ष्य उन बैंकों के सम्बन्ध में, जिनमें लाला हरकिशनलाल की दिलचस्पी थी, लोगों के मन में भय और आशंका उत्पन्न कर देता था। हिन्दू सम्प्रदाय के कुछ प्रमुख सदस्यों द्वारा यह पत्रिका चलाई जाती थी। लालाजी के विरुद्ध इस प्रकार के प्रयत्न करने पर भी जब लोगों को सफलता नहीं मिली तब उन्हें अपनी मूर्खता की प्रतीति हुई और आगे चलकर वे लालाजी के साथ सहयोग करने लगे।

सन् १६१६ में मार्शल लॉ को लेकर जब पंजाब में बखेड़े उठ खड़े हुए तो लाला हरकिशनलाल को कैद कर लिया गया। किन्तु बाद में वे छोड़ दिये गये। इस समय अमृतसर में कांग्रेस हो रही थी। इसलिए जैसा स्वागत जेल से छूटने पर लाला हरकिशनलाल और उनके साथियों का हुआ, वैसा कम ही लोगों को नसीब हुआ था अथवा आगे होगा।

फिर तो ढाई वर्ष तक पंजाब में वे मन्त्री भी रहे किन्तु इसके बाद फिर व्यापार की ओर आगये जो उनका अपना क्षेत्र था।

सन् १६२५ में पटियाला के महाराज ने एक बड़े प्रतिष्ठित जन-समुदाय के समक्ष न्यू पीपल्स बैंक आव् नदर्न इण्डिया लिमिटेड का उद्घाटन किया। चाँदी की ताली से चाँदी का ताला खोल कर उन्होंने पुरानी रस्म अदा नहीं की, व सीधे काउण्टर पर गये और बैंक के खातों में पहली लिखा पढ़ी उन्होंने ही की।

यह बैंक बहुत फला फूला और इसकी सफलता एक प्रकार से लालाजी की व्यक्तिगत विजय थी। जब न्यू पीपल्स बैंक की स्थापना हुई, भारत के आर्थिक और औद्योगिक क्षेत्र में लालाजी का अद्वितीय स्थान था। इसका अर्थ यह नहीं है कि लालाजी के समान कोई धनी व्यक्ति इस समय नहीं था, पंजाब में ही कम से कम आधे दर्जन व्यक्ति उस समय ऐसे रहे होंगे जो लालाजी से अधिक धनी थे। किन्तु सरक्षण, रुचि की विभिन्नता, पूंजी पर प्रभुत्व और व्यक्तिगत प्रभाव को स्मरण यदि

विचार किया जाय तो देश में ऐसे कम व्यक्ति थे जो लालाजी का मुकाबला कर सके।

इस समय वे केवल एक महत्त्वपूर्ण बैंक को ही व्यवस्था नही कर रहे थे बल्कि एक इन्स्योरेंस कम्पनी, ६ या ७ ग्राटे की मिलो, चीनी की फैक्ट्रियो, बिजली की कम्पनियो आदि का भी नियन्त्रण कर रहे थे। इस समय वे जितनी कम्पनियो के अध्यक्ष थे, शायद ही कोई भारतीय व्यक्ति उस समय इतनी कम्पनियो का अध्यक्ष रहा हो। इस समय उनकी बेहद आय थी। सम्पूर्ण उत्तरी भारत की आधी रियासतो के पास इस समय जितने आर्थिक साधन थे, सभवत उससे कम साधन लालाजी के पास न रहे होगे। उनकी मिलो मे हजारो श्रम-जीवी काम करते थे, ऊँचे वेतन वाले बहुत से यूरोपीय मैनेजर भी उन्होने रख छोडे थे जिन्हें एक हजार रुपये मासिक से अधिक तनख्वाह मिलती थी।

कई यूरोपीय देशो के व्यापारी इस समय लालाजी के साथ आयात आदि के सम्बन्ध में व्यापार करने के लिए उत्सुक रहा करते थे। वाणिज्य और उद्योग सम्बन्धी मामलो पर लालाजी की राय का इन दिनो बडा आदर होता था और व्यापारिक जगत पर उसका गहरा प्रभाव पडता था। कई देशी रियासतें और प्रान्त अपनी औद्योगिक और आर्थिक योजनाओं के विषय में लालाजी से राय लिया करते थे। उनकी कुछ कम्पनियो के डाइरेक्टरो में ऐसे लोग थे जो या तो व्यक्तिगत रूप से उनके प्रशसक थे अथवा किसी प्रकार

उनके कृतज्ञ थे तथा ऐसे व्यक्ति भी थे जिन्होंने न केवल पंजाब में बल्कि समूचे देश में सार्वजनिक महत्त्व प्राप्त कर लिया था।

लालाजी की शक्ति और उनका प्रभाव दिन पर दिन बढ़ता गया। पंजाब की रियासतों के बहुत से शासक भी उनसे ऋण के रूप में रुपया लिया करते थे। लालाजी ऐसे अवसरों पर शासकों को अपने हाथ से रुपया दिया करते थे ताकि आगे चलकर उसके वसूल करने में किसी प्रकार की अड़चन न आये।

अगस्त १९३१ में देश की आर्थिक स्थिति में जो संकट उपस्थित हुआ उससे न केवल पीपल्स बैंक किन्तु अन्य बैंकों पर भी बहुत बुरा प्रभाव पड़ा।

सन् १९३४ में सर डगलस यंग सर शादीलाल के स्थान में चीफ जस्टिस होकर आये।

सर डगलस के पद सँभालने पर लालाजी के गौरवशाली जीवन का एक प्रकार से अन्त ही हो गया। कोर्ट की मानहानि, दिवाला निकाल देना आदि अनेक आरोप लालाजी पर लगाये गये किन्तु लालाजी के पक्ष में यह अवश्य कहा जायगा कि विपत्तियों का भी उन्होंने उसी साहस और धैर्य से सामना किया जिससे उन्होंने व्यापार और उद्योग के क्षेत्र में सफलता प्राप्त की थी। उन्होंने अपने आलोचकों और प्रतिद्वन्द्वियों से कभी समझौता नहीं किया। जब उनके मामले की जाँच चल रही थी, १३ फर्वरी १९३७ को लालाजी इस संसार से चल बसे।

मर डगलस ने उनकी प्रत्येक वस्तु ले ली किन्तु उनकी प्रतिष्ठा को व भी न छीन सके।

व्यक्तित्व

लालाजी के व्यक्तित्व में एक प्रकार का अद्भुत आकर्षण था जिसका अनुभव वे व्यक्ति किया करते थे जो उनके सम्पर्क में आते थे। अपना लक्ष्य सिद्ध करने में वे प्राय हमेशा सफल होते थे। नुक्ताचीनी और विरोध का वे डटकर मुकाबला करते थे अपने प्रतिस्पर्धियों के प्रति वे बडे निर्मम थे। इसका अवश्यम्भावी परिणाम यह हुआ कि उन्होने अपने बहुत से शत्रु खडे कर लिये, हाँ इससे एक बडा लाभ यह अवश्य हुआ कि अपनी कडी नीति के कारण सस्थाओ तथा मनुष्यो पर वे नियत्रण रख सके जिसका ऐसी परिस्थितियो में निर्वाह कर सकना किसी अन्य मनुष्य के लिए सम्भव न होता।

लालाजी मनुष्यो के बारे म जो राय बनाते थे, वह सही निकलती थी। आर्थिक समस्याओ के सम्बन्ध में भी जो पूर्व-धारणाएँ वे बनाते थे, वे भविष्य में यथावत् सिद्ध होती थी। अपने पक्ष का वे इस कुशलता से प्रतिपादन करते थे कि विरोधी को उनकी अकाट्य दलीलो के सामने झुक जाना पडता था, सच तो यह है कि उनका प्रतिद्वन्दी एक प्रकार से हँसी का पात्र बन जाता था—उसे भी अपने विचारो का खोखलापन नजर आने लगता था।

इन्स्योरेंस, बैंक आदि की दृष्टि से आज हमारा देश काफी आगे बढ चुका है किन्तु हमें स्मरण रखना चाहिए कि बैंक और

इन्स्योरेंस के क्षेत्र में सफलतपूर्वक प्रारंभिक कार्य करने का श्रेय लाला हरकिशनलाल को ही है।

लाला हरकिशनलाल ने यद्यपि महल बनाया था किन्तु वे स्वय सबसे ऊपर की मंजिल के एक बहुत ही छोटे से कमरे में रहते थे जो उनके सोने, कपड़े पहनने तथा किसी अंश में आफिस का भी काम देता था। इस कमरे की सजावट के लिए उन्होने एक कलाकार को बुलाया और विविध प्रकार के मनोरंजक भिक्षुओ के चित्र उसमें लगाये थे। उक्त कलाकार ने करीब १०० प्रकार के भिक्षुओ के चित्र बनाकर तैयार किये थे। किसी ने जब उनसे पूछा कि भिक्षुओ के चित्र तैयार करवाने की आपको क्या सूझी तो उन्होने उत्तर दिया था–"इसके दो कारण है, पहला।तो यह है कि सब प्रकार के आभूषणो को यदि हम हटादें तो फिर हम भी भिक्षुक ही है, दूसरी बात यह है कि जब मैंने जीवन में कार्य करना प्रारम्भ किया तो मै अपेक्षाकृत निर्धन था। इन भिक्षुओ के चित्र मुझे हमेशा इस बात का स्मरण दिलाते रहेंगे कि किस प्रकार निर्धनता से मै अमीरी तक पहुँचा हूँ।"

प्रसिद्ध है कि जो उनके द्वार पर मांगने के लिए आता, वह कभी निराश होकर नही लौटता था।

ऐसे थे लाला हरकिशनलाल जिन्होने अपने साहस, बुद्धि, दृढ इच्छा शक्ति और अध्यवसाय की सहायता से व्यापार और उद्योग के क्षेत्र में नाम कमाया और अपने देश को किसी अंश में समृद्ध।बनाने के लिए पूर्ण प्रयत्न किया।

ऐल्फ्रेड मार्शल

(१८४२–१९२४)

जीवन-वृत्त

ऐल्फ्रेड मार्शल का जन्म २६ जुलाई सन् १८४२ में हुआ था। उस समय उनके पिता बैंक आव् इग्लैण्ड में खजाञ्ची का काम करते थे। ९ वर्ष की अवस्था में मार्शल को पढ़ने के लिए स्कूल भेजा गया। उनके पिता रात को ११ बजे तक उनसे पढ़ने का काम करवाते रहते थे। बचपन में मार्शल को जोर का सिर-दर्द रहता था जिसे दूर करने के लिए वे शतरज खेला करते थे। पहले तो सिर-दर्द के इलाज के लिए पिता ने उन्हें शतरज खेलने दिया किन्तु आगे चलकर उन्होंने मार्शल से कभी शतरज न खेलने की प्रतिज्ञा करवाली थी। मार्शल ने जीवन भर इस प्रतिज्ञा को निभाया। वे कहा करते थे कि इस प्रकार की प्रतिज्ञा करवाकर मेरे पिता ने अच्छा ही किया, नहीं तो बहुत सम्भव है, शतरज के खेल में ही मैं अपना सारा समय बरबाद कर देता।

मार्शल के पिता को गणित से बड़ी चिढ़ थी, पिता के कारण पुत्र को प्राचीन यहूदी भाषा के अध्ययन में बहुत सा समय लगाना पड़ता था किन्तु मार्शल को गणित में विशेष रुचि थी और वे चुपके-चुपके रेखागणित की पुस्तक पढ़ा करते

थे। किन्तु इस प्रकार के वातावरण में उनका दम घुटा जाता था। जब वे आगे अध्ययन के लिए सेंट जान्स कालेज, कैम्ब्रिज में पहुँचे तो उन्हें अपने हृदय की अभिलाषाओं को पूरा करने का मौका मिला। सन् १८६७ में मार्शल Grote क्लब के सदस्य बन गये। पहले मार्शल की इच्छा भौतिक विज्ञान पढ़ने की थी किन्तु इस क्लब में होने वाले वाद विवादों के परिणाम स्वरूप ज्ञान के दार्शनिक आधार की ओर उनकी रुचि होने लगी। अपनी कृतियों में मार्शल ने धर्म के विरुद्ध कभी कोई बात नहीं लिखी। सन् १८६५ में मार्शल कैम्ब्रिज के ग्रेजुएट हो गये।

अध्यात्मविद्या के बाद अब उन्होंने नीति शास्त्र का अध्ययन प्रारम्भ किया। नीति शास्त्र पढ़ने पर वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि समाज की वर्तमान अवस्था का आसानी से समर्थन नहीं किया जा सकता। इस पर मार्शल के एक मित्र ने कहा कि यदि आपने अर्थशास्त्र का अध्ययन किया होता तो आप ऐसा न कहते। मित्र की बात को मानकर मार्शल ने मिल की *'Political Economy'* का अध्ययन किया।

सन् १८६८ में कैम्ब्रिज के सेंट जान्स कालेज में लेक्चरर के रूप में मार्शल की नियुक्ति हो गई। ६ वर्ष तक वे अर्थशास्त्र का गहरा अध्ययन करते रहे किन्तु उन्होंने इस अरसे में कोई पुस्तक प्रकाशित नहीं करवाई। लम्बी छुट्टियों में जून से अक्टूबर तक वे विदेश भ्रमण के लिए निकल जाते। छुट्टियों के बाद वे ताजा होकर लौटते और द्विगुणित उत्साह के साथ अपने काम में लग जाते थे।

सन् १८७७ मे मार्शल चार महीने के लिए अमेरिका गये और वहां वे अनेक अर्थशास्त्रियो के सम्पर्क मे आये । अमेरिका की इस यात्रा ने उनके भावी कार्य पर भी बडा प्रभाव डाला। इस यात्रा से लौटने के बाद उन्होने कहा है, हां, मै यह अवश्य जान गया हूँ कि किन किन वस्तुओ के ज्ञान प्राप्त करने की मुझे आवश्यकता है ।

सन् १८७७ में मार्शल ने Mary Paley से शादी कर ली। Paley उनकी छात्रा भी रह चुकी थी। मार्शल की पहली पुस्तक 'The Economics of Industry' श्रीमती मार्शल की सहकारिता में ही प्रकाशित हुई थी। श्रीमती मार्शल ने अपने पति के कार्य में उनकी बडी सहायता की। जिस भक्ति और नि स्वार्थता का परिचय श्रीमती मार्शल ने दिया, उससे उनके चरित्र की विशेषता पर प्रकाश पडता है।

विवाह के बाद मार्शल ब्रिस्टल के यूनिवर्सिटी कालेज मे प्रिंसिपल होकर चले गये। श्रीमती मार्शल प्रात काल स्त्रियो की क्लास लेती और सायकाल मार्शल युवको को अर्थशास्त्र पढ़ाया करते थे। नियमित रूप से क्लास लेने के अतिरिक्त मार्शल ने सार्वजनिक भाषण भी दिये। ब्रिस्टल में मार्शल-दम्पति ने जो कार्य किया, उसकी वहां बड़ी प्रशसा हुई। किन्तु गुर्दे की बीमारी के कारण मार्शल का स्वास्थ्य खराब रहने लगा और सितम्बर सन् १८८१ में उन्होने प्रिंसिपल के पद से इस्तीफा दे दिया।

ब्रिस्टल छोड़ने के बाद मार्शल-दम्पति लगभग एक वर्ष तक इटली चले गये। वहाँ एक छोटे से होटल की छत पर मार्शल ने ५ महीने तक काम किया, इसके बाद वे फ्लोरेंस और वेनिस चले गये। सन् १८८२ में अपना स्वास्थ्य सुधार कर वे फिर ब्रिस्टल आ गये और अर्थशास्त्र के प्रोफेसर के रूप में काम करने लगे। सन् १८८४ में वे कैम्ब्रिज में अर्थ-शास्त्र के प्रोफेसर होकर आ गये।

सन् १८६० तक अर्थशास्त्र के विद्वान् के रूप में मार्शल ने बड़ी ख्याति प्राप्त करली थी। इसी वर्ष उनकी प्रसिद्ध पुस्तक (Principles of Economics Vol. I) प्रकाशित हुई जिसकी समाचारपत्रों में बड़ी विस्तृत समीक्षाएँ निकलीं। समीक्षाओं ने बतलाया कि मार्शल की इस पुस्तक से अर्थ शास्त्र के जगत् में एक नये युग का सूत्रपात हुआ है। पुराना अर्थ-शास्त्र मनुष्य को एक स्वार्थी प्राणी समझता था किन्तु मार्शल के नवीन अर्थ-शास्त्र से प्राचीन धारणाओं में बड़ा परिवर्तन हो गया।

मार्शल वर्ष भर में ४५ भाषण दिया करते थे। सप्ताह में दो दिन तीसरे पहर ४ बजे से ७ बजे तक वे घर पर रहते थे जब विश्वविद्यालय के कोई भी सदस्य सहायता और पथ-प्रदर्शन के लिए उनके पास आ सकते थे। सामान्यत भाषण देते समय वे अपने पास नोट नहीं रखते थे, हाँ अर्थ-शास्त्र के इतिहास पर जब वे भाषण देते तो अवश्य अपने साथ नोट रखा करते थे। कभी-कभी वे भाषण देने से पहले कुछ नोट तैयार करते और क्लास में जाते समय रास्ते में उन पर विचार करते चलते

थे। मार्शल के भाषण देने की एक विशेषता यह थी कि विषय वस्तु को किसी व्यवस्थित पद्धति से प्रस्तुत नहीं करते थे। उनका प्रमुख उद्देश्य यह था कि छात्र भी उनके साथ सोचने लग जायें। सप्ताह में एकबार छात्रो को वे ऐसे विषय पर प्रश्न दे दिया करते थे जिस पर उन्होंने कोई भाषण नहीं दिया हो, तब वे क्लास में उन प्रश्नो का उत्तर दिया करते थे। छात्र जिन प्रश्नो के उत्तर लिखते थे, उन्हें मार्शल बडी सतर्कता से देखते थे और उन पर टिप्पणिया लिखने में बडा परिश्रम करते थे। कभी कभी तो जितने लम्बे उत्तर होते थे, उतनी ही लम्बी उनकी टिप्पणिया भी हो जाती थी। टिप्पणियाँ लिखने में वे लाल स्याही का प्रयोग करते थे।

सन् १८८२ में Economics of Industry का प्रकाशन हुआ। Principles of Economics के भी कई सस्करण निकले, तीसरा सस्करण, जिसमें अनेक परिवर्तन किये गये, सन् १८६५ में और पांचवा सस्करण सन् १६०७ में निकला।

सन् १८६१ से १८६४ तक मार्शल Royal commission on Labour के सदस्य रहे। इस कमीशन की रिपोर्ट तैयार करने में उन्होंने बडा काम किया था।

आक्सफोर्ड में जब मार्शल को इण्डियन सिविल सर्विस वालोके लिए व्याख्यान देना पडा तो भारतवर्ष की आर्थिक और मुद्रा सम्बन्धी समस्याओ में भी वे बडी दिलचस्पी लेने लगे थे।

सन् १६०८ में मार्शल ने प्रोफेसर पद से इस्तीफा दे दिया। २३ वर्ष तक वे प्रोफेसर रहे। प्रोफेसर काल में उन्होंने

निम्नलिखित तीन महत्वपूर्ण कार्यों में भाग लिया—(१) ब्रिटिश इकनामिक एसोसियेशन की स्थापना (२) स्त्रियों का डिग्री के लिए प्रवेश और (३) कैम्ब्रिज स्कूल ग्राव इकनामिक्स की स्थापना।

सन् १९१९ में उनकी पुस्तक Industry and Trade का प्रकाशन हुआ। सन १९२३ तक इसकी ११ ००० प्रतियाँ छपी।

अपने ७८ वें जन्म दिवस पर मार्शल ने कहा कि मुझे भविष्य जीवन की कोई इच्छा नहीं। जब श्रीमती मार्शल ने पूछा कि क्या ग्राप १०० वर्ष के व्यवधान के बाद यह देखने के लिए कि यहाँ क्या हो रहा है, इस ससार में फिर ग्राना पसन्द नही करेंगे, तो उन्होंने उत्तर दिया था कि केवल जिज्ञासा की दृष्टि से ही मैं ऐसा करना चाहूँगा।

जब वे ८० वर्ष के हुए तो उनकी पाचन शक्ति बहुत कमजोर हो गई थी और व बहुत जल्दी थक भी जाते थे। इस समय उन्होंने कहा था कि मैं केवल जीने के लिए जीना नही चाहता किन्तु मैं यह अवश्य चाहता हूँ कि जो महत्वपूर्ण विचार मुझे प्रकट करने है, उन्हें मैं प्रकट कर जाऊँ।

अगस्त १९२२ में उनकी पुस्तक 'Money Credit and Commerce' पूरी हो गई जिसका प्रकाशन सन् १९२३ में हुआ। यद्यपि उनकी स्मरण शक्ति क्षीण हो गई थी और शरीर भी बहुत कमजोर पड गया था तथापि उन्होंने एक पुस्तक 'Progress: its Economic Conditions' के लिए

मसाला जुटाया किन्तु यह काम कोई साधारण न था। ८२ वर्ष की अवस्था में एक दिन उन्होने कहा कि मैं प्लैटो की रिपब्लिक पढ रहा हूँ क्योकि मैं उस रिपब्लिक के बारे में लिखना चाहता हूँ जिसको प्लैटो को आज इच्छा होती अगर वे जीवित रहते किन्तु उनकी यह इच्छा मन की मन में ही रह गई। अत में उनकी शक्ति उनसे विदा होने लगी तब भी वे प्रतिदिन प्रात काल उठकर अपना काम करने को सोचते। वे भूल जाते थे कि अब उनमें काम करने की शक्ति नही रह गई है।

१३ जुलाई सन् १९२४ को ८२ वर्ष की अवस्था में यह महान् अर्थशास्त्री उस लोक को चला गया जहाँ से लौट कर कोई नही आता।

व्यक्तित्व और देन

श्रमजीवियो के प्रति मार्शल की बडी सहानुभूति थी। सन् १८९३ में रायल कमीशन के सामने बयान देते हुए उन्होने कहा था—"पिछले २५ वर्ष मैने गरीबी की समस्या पर विचार करने में लगाये है।' मार्शल वास्तव में ऐसा उपाय खोजना चाहते थे जिससे निर्धन श्रमिको की हालत सुधर सके। वे केवल सैद्धान्तिक अर्थ-शास्त्री न थे, श्रमिको के सजीव सम्पर्क में आने का अवसर भी उनको मिलना रहता था। वे उस दिन का स्वप्न देखते थे जब हाथ से काम करने वालो की इज्जत होने लगेगी।

गृह जीवन को मार्शल वडा महत्त्व देते थे। वे नारी के लिए उन गुणों को वाछनीय एवं आवश्यक समझते थे जिनसे

घर का जीवन सुखमय बनता है। उनकी दृष्टि मे नारी पति के कामो में भी बडी सहायता पहुँचा सकती है। स्त्रियो को डिग्री देने के वे खिलाफ थे। मार्शल का विचार था कि घर को सुखी बनाने के लिये यदि किसी हद तक व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का बलिदान भी करना पडे तो वह भी उचित है। स्त्री और पुरुष की जीवन-पद्धति को भी एक ही साँचे में ढालने के पक्ष मे वे न थे।

अर्थशास्त्र पर मार्शल के जो भाषण सुन लेते थे, उनकी इस विषय में रुचि जागृत हुए बिना नही रहती थी। वे यह समझने लगते थे कि अर्थशास्त्र एक बडा महत्वपूर्ण विषय है जिसका अध्ययन किया जाना चाहिए। मार्शल की दृष्टि में अर्थशास्त्र मानव-कल्याण का एक बहुत बडा साधन था। उनके सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध है कि डिग्री लेने के दो वर्ष बाद उनका झुकाव दर्शन शास्त्र की ओर हुआ। स्विटजरलैंड में काण्ट की प्रसिद्ध पुस्तक Critique of Pure Reason लिये हुए वे घूमा करते थे। अध्यात्म विद्या के अध्ययन से वे अनुभव करने लगे थे कि इस विद्या को पूर्ण रूप से समझना मनुष्य के लिए कठिन है, इसलिए वे नीति शास्त्र की ओर झुके। नीति शास्त्र के अध्ययन से वे यह समझने लगे कि किन चीजो से मनुष्य का कल्याण होता है और कौनसी चीजें उसके लिए हानिकर हैं। अब उन्होंने अपना कर्तव्य समझा कि पार्थिव क्षेत्र में मैं उन कारणो और परिणामो का पता लगाऊँ जिससे मानव-जीवन सुखी बनता है। इस प्रकार नीति-शास्त्र से वे

अर्थशास्त्र की ओर गये थे। मनुष्य-जाति को सुखी बनाना ही उनके अर्थशास्त्र का ध्येय था। सन् १८८३ में दिये गये अपने एक भाषण में मार्शल ने कहा था—"दो प्रश्नों पर हम जितना विचार करें, उतना ही थोड़ा है। पहला तो यह है कि दुनिया में जब इतनी सम्पत्ति है तो फिर भी क्या यह आवश्यक है कि निर्धन व्यक्ति अभावों से इतने पीड़ित रहें? दूसरा प्रश्न यह है कि क्या धनी और निर्धन मनुष्यों में इतनी निःस्वार्थता नहीं है कि जीवन के प्रश्नों को ठीक ढंग से समझ लेने पर वे उसका परिचय न देने लगें? यदि मनुष्यों की निःस्वार्थता जागृत हो गई तो फिर क्या दुनिया का दुःख और दारिद्र्य दूर नहीं हो जायगा?"

प्रत्यक्ष जीवन से मार्शल हमेशा अपना सम्बन्ध बनाये रखते थे। विषय के प्रतिपादन में वे गणित की सहायता लेते थे किन्तु उतनी ही जितनी आवश्यक हो। गणित पर ज्यादा निर्भर रहने में खतरा यह है कि कहीं हम केवल बौद्धिक उलझनों में उलझ कर यथार्थ जीवन को न भूल जायें। वे लिखते भी इस ढंग से थे जिसे न केवल अर्थशास्त्र के विद्यार्थी ही समझ सकें बल्कि जो व्यावहारिक जगत के मनुष्यों की पहुँच के बाहर भी न हो।

अर्थशास्त्र के क्षेत्र में मार्शल का स्थान अद्वितीय था, यह तो सभी जानते हैं किन्तु इससे भी बड़ी बात यह थी कि मार्शल ने निःस्वार्थ भाव से अर्थशास्त्र के माध्यम द्वारा मानव-जीवन को सुखी बनाने का यथाशक्ति प्रयत्न किया था।

अर्थशास्त्र के जिन सिद्धान्तो का मौलिक प्रतिपादन मार्शल ने किया था, उनकी व्याख्या करना अर्थशास्त्र के विशिष्ट विद्वानो का काम है किन्तु मार्शल के जीवन का जो सन्देश है उसे निम्नलिखित शब्दो में प्रकट किया जा सकता है—

"जो कुछ भी आप काम हाथ लें, उसे मन लगाकर पूरा करें चाहे ऐसा करने में कितनी ही विघ्न-बाधाओ का सामना क्यो न करना पड़े। किसी अच्छे उद्देश्य के लिए जीवन को समर्पित कर देना ही मनुष्य का परम पुनीत कर्त्तव्य है।"

गैटानो मार्जोटो

(आधुनिक इटली का आदर्श धनकुबेर)

वेनिस के पास एक बरसाती दिन को, एक नन्हे से टापू के तट पर भारी भरकम ओवरकोट पहने, झाड़ियों और कमजोर पेड़ों के सम्मुख ५९ वर्ष की अपनी विशाल, किन्तु कुछ रुग्ण काया को लिये खड़ा था इटली का सबसे बड़ा व्यापारी-उद्योगपति गैटानो मार्जोटो। मौसम से निरुद्वेग अपनी तेज नौका का स्वयं सचालन कर दोनों ओर पानी की चादर फेंकता वह अपनी रचना का अवलोकन कर रहा था और अपने साथी को उसका विवरण सुना रहा था।

"उधर देखो, अपनी दाहिनी ओर। वे खेत दिखाई देते हैं न और बायीं ओर वे पेड़? तीन वर्ष पहले वहाँ कुछ भी नहीं था।

'वहाँ था २५०० एकड़ का बँधा पानी, कीचड़-दलदल। और, वहाँ अब हैं फलों का बाग और मछली पालने के स्थान।

"हमने नहरें खोदीं, बाँध बाँधे, समुद्र के पिछले पानी को निकाल बाहर किया। बँधे, सड़ते दलदलों को हमने करीब एक अरब वर्गफुट अच्छे जलाशयों में परिणत कर लिया है और करीब १५०० एकड़ खेती के लायक जमीन तैयार कर ली है।

"तीन वर्ष पहले तो यहाँ जल-थल सब जगह नमक-ही-नमक था। बुल-डोजरो ने अपना पराक्रम दिखाया, बरसात ने हमारी मदद की। सारी जगह का क्षार बह कर साफ हो गया।"

अपने मुँह पर पडते पानी के छीटो को पोछते हुए उसने अपनी 'रनिंग कमेंटरी' चालू रखी—

"देखते हो न, उधर उन पम्पो से निकलता श्वेत फेन-समुद्र का पाप समुद्र को लौटाया जा रहा है। पीछे रह जाती है बहुत ही उपजाऊ भूमि-सड़ी-गली वनस्पति और बालू के कणो से मिली मिट्टी सचमुच वरदायिनी है। पहले वर्ष में ही एक एकड में ६१ बुशल गेहूँ। और, आँखे खोलकर देखो, ये फलो के वृक्ष पाँच वर्ष के से लगते है न? पर है ये दो वर्ष के ही। कितने होगे ये पेड? ७०,००० पेड फलो के लिए और ८०,००० शहतीरो के लिए! ये सभी लगाये गये है दो वर्ष मे।

"मै, जितना हो सकता है, मशीनो से काम लेता हूँ। मनुष्य से वही काम लेने चाहिए, जो मूर्ख मशीनें नही कर सकें। पर यह सब मेरा ही नही है, किसानो का भी है। हमने उन्हे खेती करना सिखाया है। और, देखते हो न ये दुधारू हृष्ट-पुष्ट गायें। तीन साल पहले इन किसानो को पता ही नही था कि, शुद्ध वशीय गाये क्या होती है और क्या होते है अच्छे जानवर? जानते भी कैसे, जब ये खुद जानवरो से बदतर थे।"

"यहाँ का प्रत्येक निवासी काम पर लगा है। प्रत्येक परिवार के लिए रहने का नया घर है, प्रत्येक कामगार को साल भर में करीब तीन हजार रुपया मिल जाता है। वह बड़े सुख से अपना जीवन बिता रहा है······।"

कुछ ही देर में नौका किनारे आ लगी। उस समय यह कर्मशूर कह रहा था—"इन बाग-बाड़ियों से हमारे फल और सब्जियाँ कुछ ही घंटों में बर्लिन और वियना पहुँच जाया करेंगी। क्यों नहीं—सूरज की इस कृपा को हमारे उत्पादन में एकत्रित कर क्यों न हम वहाँ पहुँचावें, जहाँ वह उपलब्ध नहीं है ?··· · मैंने सरकार के आगे हाथ नहीं पसारा ·· उसकी मदद कभी माँगी ही नहीं।"

यहाँ परिचय प्रारम्भ किया गया था एक व्यापारी का, एक उद्योगपति का किन्तु ऊपर की इन पंक्तियों में तो चित्र है एक कृषि-विशेषज्ञ का। हाँ, सही है, उसका असली स्वरूप तो उद्योगपति का ही है। ये काम तो एक प्रकार से उसकी बहुमुखी योग्यता के उपप्रदर्शन हैं। अमेरिका के हेनरी फोर्ड की तरह इटली का गैटानो मार्जोटो प्रसिद्ध है ऊन के उद्योग-व्यवसाय के लिए। आस्ट्रेलिया से ऊन मँगाकर देश-विदेशों को साल भर में सोलह हजार मील से भी अधिक लम्बा ऊनी कपड़ा ५० करोड़ रुपये से भी अधिक का माल पहुँचाने वाला है यह इटली का सर्वोपरि उद्योगपति १४००० श्रमिकों का राजा।

इटली का एक छोटा-सा शहर, मार्जोटो-परिवार द्वारा ही निर्मित, वल्दानो उसका क्रीडा-क्षेत्र है। वहाँ के तीस हजार

निवासी इटली में सबसे अधिक सुखी हैं। उनका सुख-सन्तोष अभूतपूर्व हैं। उस छोटे-से नगर में सार्वजनिक हित की जितनी बडी और जैसी संस्थाएँ हैं, वैसी यूरोप भर में कहीं नहीं--समृद्ध स्वीडन और स्विटजरलैंड में भी नहीं। नगर-निवासियों में तो आन्तरिक सुख के सौंदर्य की छटा छायी हुई है ही, बाहरी सौन्दर्य का भी क्या कहना! संगमरमर, औमियम, फूल, रंग, वाचनालय, स्नानागार, भोजनालय, अनाथालय, प्रसतिगृह, अस्पताल—नये से नये साधनों से पूर्ण! शिक्षा के लिये मार्जोटो ने स्कूल बनाकर नगर-निवासियों को एक एक लीरा एक एक अधेले में बेच दिये हैं, जिससे नगर-निवासी उन स्कूलों को अपना समझें, उन्हें भली भाँति चलावें। इटली की सर्वोत्तम टेकनिकल संस्था भी यही है। तैरने के तालाब, घुड़सवारी के स्कूल, सहकारी दूकानें—सभी कुछ उसने इस शहर में बनाया बसाया है।

अपनी योग्यता व अपनी सफलता के बल पर आज वह अपने पुत्र स्वजनों पर ही नहीं, अपने पास-पड़ोस और दूर निकट, सब पर शासन करता है। अपने बेटों, बहुओं, मित्रों के बीच रात्रि के भोजन के समय अथवा कारखाने सम्बन्धी बातों के लिए मजदूरों के एक समुदाय के बीच या आगतुक पढ़े-लिखे व इजीनियरों की मंडली के बीच एक वही सबके आकर्षण का केन्द्र, सबका सिरमौर-सा लगता है।

उसकी चाल-ढाल सब निराली है। अपने लिये ही नहीं, अपने आश्रितों परिचितों के लिए भी कायदे-कानून वही बनाता

है और सब उसे मानते है। जिस दिन से उसने तमाखू पीना छोडा, किसकी मजाल, जो दूसरा कोई भी उसके सामने तमाखू पी ले ! अपनी ही नही, अपने निकटवालो की दिन-चर्या, उनका कार्यक्रम, उनके भोजन का 'मेन्यू', उनकी मिनट-मिनट की व्यवस्था, वह स्वय अपने ही हाथो से करता है।

वह व्यवस्था-पसन्द है। जरा भी अव्यवस्था उसे नही रुचती और जो व्यवस्था रख सकते है, उनका वह बडा आदर भी करता है।

पुस्तको से उसे प्रेम नही, पर उसका ज्ञान कम नही। फ्रास के राजाओ की कथाओ से वह परिचित है, तो अमेरिका के निर्माताओ की जीवनी से भी। ससार के प्रसिद्ध सग्रहालयो से उसका पूरा परिचय है। प्रकृति-प्रेम भी उसका कम नही, आग्नो नदी पर सूर्यास्त के मोहक दृश्य को देखकर वह सुप्रसिद्ध कवि टरनर की पक्तियों को याद कर विमुग्ध हो जाता है। वह कभी गिरजाघर नही जाता। कहा करता है, वहाँ जाने से पीठ में सर्दी लग जाया करती है।

ऐसी विपरीत भावनाओ और विविध अभिरुचि व योग्यताओ वाला यह पुरुष इटली में वहा के प्रधान मत्री से कम प्रभावशाली नहीं है। मार्जोटो ने एक बार राजनीति में प्रवेश करने का विचार किया था; आजीवन सिनेटर नियुक्त करने की प्रार्थना भी उसने प्रेसिडेंट से की थी, पर वह स्वीकृत नहीं हुई।

ऊनी व्यवसाय का तो वह बादशाह है ही, पर उसकी व्यवसाय-तत्परता ४१ मार्जोटो-होटलों की मणि माला में, मार्जोटो-मार्बल में, मार्जोटो-शराब में, मार्जोटो-साबुन तक में प्रकट हुई है। खेती और कारखाने का सफल समन्वय उसी ने सबसे पहले यूरोप में कर दिखाया है। कृषि के उत्पादनों को कारखानों के काम में लाने का एक उदाहरण है—विला नोवा में उसकी सूर्यमुखी के बीज की खेती। उन बीजों से वह रोज दस टन साबुन बनाता है और इतना सस्ता बेचता है कि बाकी सभी साबुन-उत्पादक उससे हमेशा डरते रहते हैं।

सवा लाख तकुओं की ऊन की उसकी सात मिलें हैं, जिनमें कच्चे ऊन को लेकर सिले सिलाये कपड़े तैयार करने तक का काम होता है। प्रतिवर्ष ८५ हजार ऊन की गाँठें वह खरीदता है। उसके उत्पादन का ६५ प्रतिशत विदेशों को निर्यात होता है। ऊनी वस्त्रों का उसका अनुभव और ज्ञान इतना विशाल और पूर्ण है कि करीब ५००० जाति के कपड़ों को वह सिर्फ छूकर पहचान जाता है।

उसकी जीवन-कहानी भी बड़ी रोचक है। उसका पूर्वज लुइगी एक जुलाहा था। हैजे के डर से गाँव वाले भागकर अमेरिका जा रहे थे, तब ५० वर्ष पहले लुइगी ने उस गाँव में ऊन का व्यवसाय आरम्भ किया। किन्तु उस व्यवसाय को मशीन और प्राण प्रदान किये गैटानो के पिता वित्तोरियो एमानूल ने। उसकी मृत्यु के समय उसके नीचे १४०० कारीगर काम करते थे। किन्तु सन् १९२१ में एमानूल की मृत्यु बड़े

टु:खपूर्ण ढंग से हुई। उन दिनों मजदूर-महाजन के सम्बन्ध बड़े खराब थे—हड़तालें होती रहती, वातावरण दूषित रहता। एक दिन कारखाने से लौटते समय एक गोली की आवाज सुनायी दी और दूसरे क्षण एमानूल धराशायी होता दिखायी दिया। गोली मारने वाला था एमानूल का एक औरस पुत्र!

पिता की मृत्यु के बाद अपने परिवार के उद्योग का सर्वेसर्वा होकर गेंटानो ने उसे खूब विस्तृत किया। पिता की मृत्यु के समय जब उसके नीचे १४०० काम करने वाले थे, आज १४००० हैं। सात फैक्टरियाँ हैं, सवा लाख तकुए और बच्चे ऊन से बने बनाये, सिले सिलाये कोट प्रस्तुत करने की नयी से नयी मशीनें। प्रति वर्ष वह ऊन की ८५,००० गांठ खरीदता है और उसकी राय पर दुनिया भर के ऊन का बाजार चलता है।

काम में सहारा देने के लिए उसे मिले भी होशियार साथी हैं। दो तो उसके अपने बेटे हैं और उसका एक साथी तो काम का ऐसा विशेषज्ञ है कि रेगिस्तान को मर सब्ज बनाकर दिखाने की योजना कुछक घंटों में गढ़कर तैयार कर दे। चार सौ आदमियों का उसका दफ्तर क्या है, एक बड़ी ट्रेन को अनवरत खींचकर ले जाने वाला एंजिन है और इस एंजिन का चालक खुद गेंटानो है।

प्रातःकाल ६॥ बजे से रात के १० बजे तक वह चाहे जहाँ रहे, अपने काम की बागडोर सँभाले रहता है। धंधे की छोटी-बड़ी सभी समस्याओं से वह परिचित रहता है और

उनके सम्बन्ध में अपने आदेश देता रहता है। जल्दी काम करने की उसकी क्षमता वास्तव में अद्भुत है। बिना मतलब की लम्बी बात से उसे चिढ़ है। एक बार एक तार को देखकर उसने अपने सेक्रेटरी से कहा—"पन्द्रह शब्द ? इतने ज्यादा ! दो ही बहुत हैं।"

मार्जोटो ने पिछली लड़ाई में चार वर्ष सेना के गोलदाजों में बिताये, पर शुरू-शुरू में ही उसकी टाँग टूट गयी। एक दिन उसने देखा, एक सिपाही मोटर ट्रक से गिर कर मर गया। बिना कुछ सोचे समझे उसकी लाश खड्डे में फेंक दी गयी और वह भुला दिया गया। किन्तु दूसरे दिन गाड़ी का एक घोड़ा मारा गया तो उस पर तीन दिन जाँच होती रही और उसकी रिपोर्ट तैयार की गयी !......यह देख उसने सेना का साथ छोड़ दिया।

वह कई बार मुसोलिनी से मिल चुका है। उससे असहमत रहता था, उसकी रीति-नीति का विरोध करता था। वह कहा करता है—"इतिहास हमें सिखाता है कि अभ्युदय और कीर्ति आते और चले जाते हैं और सदैव अपने पीछे छोड़ जाते है दुर्गति-दुर्भाग्य।" उद्योग-व्यवसाय ही नहीं, कृषि-गोरक्षा के कार्य में भी मार्जोटो सफल हुआ हैं। ५३०० एकड़ के एक दलदल की, जहाँ के निवासी बेकार निराश होकर जीवन की सभी बातों के विरोधी बन बैठे थे, मार्जोटो ने काया पलट कर दी है। सारी जमीन के तीन भाग करके एक भाग में ट्रैक्टरों का यूरोप में सबसे बड़ा उपयोग केन्द्र स्थापित कर दिया

है। खेती वह करवाता है जैतून, अंगूर और फलों की, जिनमें मेहनत कम हो और आमदनी ज्यादा !

भूमि के एक दूसरे दलदली भाग का पानी निकाला जा रहा है। वहाँ मछली पकड़ने के केन्द्र बनाये जा रहे है। एक तीसरे भाग में ऐसी खेती की जाती है जिसका उत्पादन वहीं स्थापित कारखानों के काम में आ जाय। उसके कृषि-विस्तार में भी एक आयोजन है और जिस प्रकार उसकी फैक्टरियों पर, उसके ऊन के एक-एक कपड़े पर, मार्जोटो की छाप है, उसी प्रकार इस भूमि के एक-एक खण्ड पर–यहाँ के उत्पादन के एक-एक पदार्थ पर मार्जोटो की छाप लगी हुई है।

वर्तमान काल के इस आदर्श निर्माता से जब पूछा गया कि तुम्हारा आदर्श क्या है, तो उसने यही छोटा-सा उत्तर दिया—"जैसी दुनिया मुझे मिली, उससे उसे कुछ बेहतर बना कर छोड़ जाना।"+

+ (नवनीत वर्ष ३ अङ्क १०) से साभार

जॉन मेनार्ड कीन्स

जॉन मेनार्ड कीन्स का जन्म सन् १८८३ ई० की ५ जून को कैम्ब्रिज में हुआ। उनके पिता उस समय तर्कशास्त्र और अर्थशास्त्र के प्राध्यापक थे। वे एक डायरी रखा करते थे। उस डायरी से पता चलता है कि बालक कीन्स का किस प्रकार विकास हुआ। कहते हैं, कीन्स जब ४॥ वर्ष के थे, उनसे पूछा गया—"व्याज से क्या तात्पर्य है ?" उन्होंने उत्तर दिया—"अगर मैं आपको आधा पेंस दे दूँ और आप इसे बहुत समय तक अपने पास रखें तो वह आधा पेंस तो लौटाना ही होगा, उसके अलावा आधा पेंस और देना होगा। यही व्याज है।"

कीन्स जब ७ वर्ष के हुए, एक दिन उनके पिता ने उनसे कहा—"जब डा० जेम्स वार्ड हमारे यहाँ लंच के लिए आये थे, उस दिन तो तुम्हारा बर्ताव-व्यवहार बड़ा अच्छा था किन्तु क्या बात है, उसके बाद लंच के समय तुम्हारा व्यवहार इतना सुंदर नहीं रहता ?" कीन्स ने उत्तर दिया—"उसके लिए तो मैं कई दिनों से तैयारी कर रहा था और बड़े प्रयत्न से मैं ऐसा कर सका था, रोज-रोज तो मैं ऐसा नहीं कर सकता।" पिता इस उत्तर को सुनकर बड़े प्रसन्न हुए थे।

सन् १८९० में मेनार्ड को किंडरगार्टन स्कूल में भेजा गया किन्तु वास्तव में उनकी प्रारंभिक शिक्षा घर पर ही हुई। सन्

१८६२ में वे सेंट फेथ की स्कूल मे भेजे गये जहाँ मिस्टर गुड्चाइल्ड हेडमास्टर थे। बालक मेनार्ड गणित और बीजगणित में बड़े होशियार थे किन्तु उनका स्वास्थ्य अच्छा नही रहता था। सर्दी, जुकाम, खासी, सिर-दर्द आदि की शिकायत बनी ही रहती थी। क्रिकेट में उनकी बड़ी दिलचस्पी थी यद्यपि क्रिकेट के बहुत अच्छे खिलाडी वे कभी नही बन सके।

११ वर्ष की अवस्था मे वे अपनी कक्षा में सर्व प्रथम रहे, अब उनका बडी शीघ्रता से विकास होने लगा। हेडमास्टर ने रिपोर्ट दी कि मेनार्ड स्कूल के सभी छात्रो से कही अधिक होशियार है और मुझे विश्वास है कि एटन जाने के लिए उनको छात्रवृत्ति मिल सकेगी। अब तो उनकी शिक्षा का विशेष प्रबन्ध किया गया। उनको घर पर पढाने के लिए कुछ समय तक ट्यूटर रखे गये। एटन जाने पर मेनार्ड को बडा अच्छा वातावरण मिला। प्रति सप्ताह वे अपने पिता को पत्र लिखा करते थे। उन पत्रो से पता चलता है कि मेनार्ड पढने-लिखने, खेल-कूद तथा स्कूल की सभी प्रगतियो में बड़ा रस लेने लगे थे। हाथ देखने मे उनकी बडी रुचि थी। वे समझते थे कि हाथो से मनुष्य के चरित्र का पता लग सकता है। उनके हाथ मुलायम थे, अंगुलियाँ लम्बी और नाजुक थी।

आक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज के जो अण्डरग्रेजुएट होते है, वे भाषणो और व्याख्यानो से उतनी शिक्षा नही प्राप्त करते जितनी शिक्षा वे दूसरे अण्डरग्रेजुएट साथियो से प्राप्त कर लेते है। मेनार्ड जब कैम्ब्रिज में अण्डरग्रेजुएट थे, उस समय

वे वालपोल डिबेटिंग सोसाइटी के वाद-विवादो में सक्रिय भाग लिया करते थे।

सन् १९०३ में कीन्स ने 'समय' पर एक निबंध पढा जिसकी बडी प्रशसा हुई।

मेनार्ड यूनियन के वाद-विवादो मे प्राय भाग लिया करते थे। वे यूनियन के सेक्रेटरी, वाइस प्रेसीडेंट और आगे चलकर प्रेसीडेंट भी हो गये थे।

मेनार्ड अब यह सोचने लगे थे कि सही-सही सोचना और दुनिया की घटनाओ को प्रभावित करना—यही उनके जीवन का लक्ष्य होना चाहिए।

जी० एल० स्ट्रेची के नाम लिखे हुए १५ नवम्बर १९०५ के पत्र में मेनार्ड ने लिखा था—"अर्थशास्त्र मुझे बहुत सतोप-जनक लगता है और अपने विचार से मैं इसमें अच्छा भी हूँ।" प्रसिद्ध अर्थशास्त्री ऐल्फ्रेड मार्शल की भी यही इच्छा थी कि कीन्स अर्थशास्त्र को व्यवसाय के रूप में अपना लें।

कीन्स ने कुछ समय तक इण्डिया ऑफिस में भी काम किया किन्तु बाद में उन्होने वहाँ से इस्तीफा दे दिया।

किंग्स कालेज में फेल हो जाने के बाद सन् १९०९ में कीन्स ने सप्ताह में तीन वार Money, Credit और Prices पर भाषण देना प्रारम्भ किया। उन्होने श्रोताओ को अपने भाषणो से बहुत प्रभावित किया। सिद्धान्तो पर भाषण देते समय भी वे बीच बीच में बहुत से उदाहरण दिया करते थे

जिससे श्रोताओं को इस बात का पता चल जाता था कि जिन सिद्धान्तों का अध्ययन वे कर रहे हैं, वे देश की परिस्थितियों पर लागू होते हैं, केवल सिद्धान्त नहीं हैं। अण्डरग्रेजुएट छात्रों के लिए उन्होंने एक Political Economy Club की भी स्थापना की जिसने आगे चलकर बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त की। सन् १६१० में वे Special Board for Economics and Politics के लिए चुन लिये गये और बाद में वे ही इसके मन्त्री बना दिये गये।

सन् १६१२ में कीन्स ने 'Indian Currency and Finance' पर काम करना शुरू किया। यह पुस्तक सन् १६१३ में पूरी हुई। सर्वसम्मति से कीन्स की यह एक उत्कृष्ट कृति है। इस पुस्तक का दूसरा अध्याय तो जो गोल्ड एक्सचेंज स्टेंडर्ड पर है, बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है। इन्हीं दिनों 'Indian finance and Currency' सम्बन्धी मामलों की तहकीकात करने के लिए एक रायल कमीशन की नियुक्ति हुई जिसके मन्त्री पद के लिए कीन्स से प्रार्थना की गई। इस कमीशन ने जो रिपोर्ट तैयार की, उसमें कीन्स का बहुत बड़ा हाथ था।

जब पहला युद्ध छिड़ा तो कीन्स ने 'War and the Financial System' पर एक अत्यन्त महत्वपूर्ण लेख लिखा जो Economic Journal के सितम्बर के अङ्क में छपा। इसमें बड़ी स्पष्टता के साथ विषय का प्रतिपादन किया गया था। सन् १६१५ में उन्होंने 'ट्रेजरी' में काम करना शुरू किया।

सन् १६१७ मे ट्यूजडे क्लब की स्थापना हुई जिसमें कीन्स समय समय पर आर्थिक विषयो पर अपने बहुत से निबन्ध पढा करते थे। इसी वर्ष अनेक आर्थिक प्रश्नो को सुलझाने के लिए वे लार्ड रीडिंग के साथ यूनाइटेड स्टेट्स गये।

युद्ध के बाद कीन्स की प्रसिद्ध 'The Economic consequences of Peace' निकली।

कीन्स का झुकाव सट्टे की ओर भी हुआ। वे परम्परागत इस सिद्धान्त को मानते थे कि सट्टे में सफलता प्राप्त करने से समाज को लाभ होता है।

सन् १६१४ के बाद कीन्स स्वय बहुत अधिक पढते नही थे। साल मे करीब १०० लेख वे पढ पाते थे। प्रत्येक सप्ताह मेंवे वल एक बार Money पर भाषण दिया करते थे। उनके भाषणो मे वे ही आ सकते थे जिनको Part I में प्रथम श्रेणी मिली हो या जिनकी कोई विशेष सिफारिश हो।

सन् १६२१ में मैन्चेस्टर गार्जियन आदि के लिये वे नियमित रूप से लिखने लग गये थे। अपने लेखो से भी उनकी कुछ कम आय न थी। इसी वर्ष तर्क शास्त्र सबधी उनकी प्रसिद्ध कृति 'Treatise on Probability' का प्रकाशन हुआ जिसकी प्रशसा बर्ट्रेण्ड रसल जैसे विद्वानो तक ने की।

सन् १६२५ मे इग्लैंडने गोल्ड स्टैंडर्ड अपनाया था यद्यपि कीन्स इसके खिलाफ थे। उस समय किसी ने कीन्स के विचारो

पर ध्यान नही दिया किन्तु ७ वर्ष बाद अधिकांश लोगो ने अनुभव किया कि गोल्ड स्टेंडर्ड को अपनाना एक भूल थी।

४ अगस्त १९२५ को कीन्स ने Lydia Lopokova से शादी की। लीडिया के सबन्धियो से मिलने के लिए वे सपत्नीक रूस भी गये। उस समय रूस के सम्बन्ध मे उन्होने तीन लेख लिखे।

A Treatise Money कीन्स की सबसे महत्वपूर्ण कृति है। कहते है, इसे लिखने मे उन्हे ५ वर्ष लगे किन्तु वास्तव मे देखा जाय तो यह उनके जीवन भर का कार्य था। यह दिसम्बर १९३० में दो जिल्दो मे प्रकाशित हुई। सन् १९३६ में 'The General Theory of Employment, Interest and Money' का प्रकाशन हुआ।

सन् १९१५ मे कीन्स Appendicitis से पीडित हुए थे और तभी आपरेशन भी हुआ था। २२ वर्ष बाद सन् १९३७ में वे फिर बीमार हुए। इस बीमारी में उनकी पत्नी लीडिया ने उनकी बडी सेवा की। जब दूसरा विश्व युद्ध प्रारम्भ हुआ, अमेरिका से ऋण लेने सम्बन्धी मामलो में कीन्स ने बडा महत्वपूर्ण योग दिया। उन्होने इतना परिश्रम किया कि उनका स्वास्थ्य भी खराब रहने लगा।

सन् १९४६ मे एक दिन प्रात काल उनको खाँसी आई। उनकी माता दौडकर उनके कमरे में पहुँची। लीडिया भी एक क्षण में वहीं आगई किन्तु इस बार उन्हें कोई बचा न सका, यह मृत्यु का बुलावा था।

व्यक्तित्व और देन

मार्शल जैसे अर्थशास्त्री इसमें गौरव का अनुभव करते थे कि कीन्स उनके शिष्यों में रहे हैं। कीन्स का जीवन प्रारम्भ से लेकर अन्त तक एक कर्मठ व्यक्ति का जीवन था। आर्थिक संकटों में से अपने देश को निकालने के लिए उन्होंने कुछ उठा नहीं रखा। देश की भलाई करते हुए उन्होंने अपने व्यक्तिगत स्वार्थों की ओर कभी ध्यान नहीं दिया। प्रतिभाशाली व्यक्तियों की यह विशेषता होती है कि यदि उनकी कोई बात नहीं मानता तो वे रुष्ट हो जाते हैं और फिर उनसे काम लेना बड़ा मुश्किल हो जाता है। किन्तु कीन्स के सम्बन्ध में यह नहीं कहा जा सकता। यदि उनकी कोई योजना स्वीकृत नहीं होती थी तो वे दूसरी योजना के बारे में विचार करने लगते थे।

तर्कपूर्ण युक्तियों का सहारा लेकर यदि कोई दलील करता तो कीन्स को बड़ी प्रसन्नता होती थी। वे स्वयं तर्क करने में बड़े कुशल थे। उनकी दलीलें प्रायः अकाट्य हुआ करती थीं। किसी विषय का प्रतिपादन करने के लिए जब वे बोलने के लिए खड़े होते थे तो वे श्रोताओं का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किये बिना नहीं रहते थे। जो कुछ वे कहते, उसकी सचाई में उन्हें एक क्षण के लिये भी सन्देह नहीं होता था। उनमें किसी प्रकार का पाखण्ड अथवा कृत्रिमता नहीं थी। यद्यपि वे तेजी से बोलते थे तो भी उनके भाषणों में इतनी स्पष्टता होती थी कि उनकी बात ठेठ श्रोताओं के हृदय तक पहुँच जाती थी।

ऐसे कम अर्थ-शास्त्री होंगे जिनको अंग्रेजी गद्य लिखने में कीन्स जैसी सफलता मिली हो। कुछ विद्वानों की तो धारणा है कि अंग्रेजी गद्य-लेखक के रूप में भी वे चिर स्मरणीय रहेंगे। उनके व्यक्तित्व में वैज्ञानिक और कलाकार का अद्भुत सगम था। कलाकारों की सगति में उन्हें आनन्द आता था।

बहुत से वैज्ञानिक ऐसे होते हैं जिनको अपने विषय से तो प्रेम होता है किन्तु दूसरों के साथ बर्ताव-व्यवहार करने में वे बड़े रूखे होते हैं लेकिन जो व्यक्ति कीन्स के सम्पर्क मे आते थे, उनसे वे प्रेम करने लगते थे और उनके जीवन को सुखी बनाने की वे यथाशक्ति, चेष्टा करते थे।

स्वभाव से वे प्रगतिशील और सुधारक थे। उनका विश्वास था कि सम्यक् विचार और दृढ़ इच्छा-शक्ति की सहायता से सुधार किया जा सकता है। रास्ते में रोड़े अटकाने को वे बहुत बुरा समझते थे। उनका देश प्रेम प्रशसनीय था। देश पर जब किसी प्रकार का सकट आता तो वे उसका उपाय ढूँढने में लग जाते थे।

किन्तु समाजवादी नही थे। लाभ का बहुत बड़ा अंश पूजीपतियो और उद्योगपतियो के पास चला जाय, इसके पक्ष में वे न थे, वे चाहते थे कि इस प्रकार का लाभ जितना कम हो सके उतना अच्छा है और वे इस बात की आशा रखते थे कि इस प्रकार की किसी आर्थिक पद्धति का कभी जन्म होगा जिसमें पूंजीपतियो और उद्योगपतियो का लाभ कम किया जा

गक। उद्योग धन्धे और व्यापार राज्य अपने हाथ मे ले ल, इसे वे ठीक नही समझते थे।

कीन्स की जब मृत्यु हुई तो उनके पास लगभग ५ लाख पौंड निकले। अनेक लोगो को इस बात से बड़ा आश्चर्य हुआ कि कीन्स इतने धनी थे। कीन्स ने अपने स्वतत्र प्रयत्नो से पैसा कमाने में सफलता प्राप्त की थी। पुस्तकें और चित्र खरीदने में वे खूब खर्च करते थे और किसी अच्छे निमित्त के लिए वे मुक्तहस्त से दान भी देते थे। इसके अतिरिक्त स्वय एक अच्छे अर्थशास्त्री होने के कारण उन्होने अपने आय व्यय को इस प्रकार व्यवस्थित कर रखा था कि मृत्यु के समय अपनी प्रिय सस्था किंग्स कालेज के लिए भी वे एक अच्छी वसीयत कर गये।

उनकी मृत्यु के समय उनके निजी पुस्तकालय में लगभग ४,००० अलभ्य पुस्तकें और करीब ३०० पाण्डुलिपियाँ थी। इनके अलावा अर्थशास्त्र-सबन्धी पुस्तकों का बहुत बड़ा सग्रह उनके पुस्तकालय में था जिसे उन्होने कैम्ब्रिज की 'मार्शल लाइब्रेरी' को वसीयत में दे दिया था। उनकी एक विशेषता यह भी थी कि जो पुस्तक खरीदते थे, उसे अवश्य पढते भी थे। दूसरे विद्वानो से उनका पत्र-व्यवहार चलता था और बडी उदारतापूर्वक अपनी पुस्तकें दूसरो के उपयोग के लिए वे दे दिया करते थे। मृत्यु के समय उनकी लगभग १७५ पुस्तकें बाहर गई हुई थी।

पुरुषार्थ के पुजारी लक्ष्मणराव किर्लोस्कर

सन् १८८७ या ८८ की बात है। बेलगाव (महाराष्ट्र) मे एक १८ वर्षीय तरुण बम्बई आया–किसी नौकरी की तलाश मे यह तरुण तनिक भी आकर्षक नही लगता था, साधारण कद, मोटी धोती और गँवई ढग का एक सामान्य कुर्ता। इस तरुण को लडकपन से ही मशीनो में दिलचस्पी थी। लिहाजा, बम्बई में वह कोई ऐसा काम चाहता था, जिससे उसे अपने मनोवाछित विषय में उन्नति करने का अवसर मिल सके, और किसी ऊँचे काम की तो वह बात ही नही सोचता, क्योकि शिक्षा-सम्बन्धी उसकी योग्यता बहुत कम थी। हाँ, मराठी मे लिखने-पढने की योग्यता के साथ उसे सामान्य अग्रेजी-ज्ञान जरूर था। कई दिनो तक तरुण ने काम की जहा-तहां तलाश की और अन्त में अपने मनचाहे विषय की ज्ञान-वृद्धि के लिए कृत-सकल्प हो वह बम्बई के प्रसिद्ध यात्रिक शिक्षणालय 'विक्टोरिया ज्युबिली टेक्निकल इंस्टिट्यूट' के तत्कालीन प्रधान अध्यापक श्री फिथियन के पास गया। फिथियन उसकी लगन और सकल्प-शक्ति से बडे प्रभावित हुए और उन्होने उसे 'ड्राफ्टमैनशिप' के वर्ग में दाखिल कर लिया। कुछ ही दिनो मे इस उत्साही तरुण ने इंस्टिट्यूट के पुस्तकालय में आने वाली यत्र-ज्ञान सम्बन्धी अमरीकी पत्रिकाओ तथा पुस्तको द्वारा अपनी जानकारी इतनी बढाली

कि, वह सुबह से स्वय छात्र-रूप मे वहाँ पढता और दोपहर मे शिक्षक रूप में पढाता। श्री फिथियन तरुण के इस कर्तव्यशील प्रखर व्यक्तित्व से अत्यन्त प्रसन्न थ।

कहा जाता है कि ज्ञान का भडार बन्द होकर नही रह सकता। फिर भला ऐसा व्यक्ति, जो अपने ज्ञान और परिश्रम का सम्बल लेकर ही जीवन-यात्रा में बढने की अभिलाषा रखता हो, वह अपने ज्ञान को किस तरह अपने तक ही सीमित रखता ? यह छात्र-शिक्षक अपना विषय पढाते समय अमेरिका अथवा अन्य पाश्चात्य देशों में विकसित नित-नवीन यत्र विज्ञान-प्रणाली की जानकारी भी अपने छात्रो को कराने लगा। छात्र इन नयी जानकारियो मे बडी दिलचस्पी लेते ! मगर उसे क्या पता था कि, गुलाम देश के नागरिको को अपनी ज्ञान-पिपासा शान्त करने का भी अधिकार नही होता !

फिथियन साहब थे तो गुणग्राही, पर वह भी तो प्रचलित साम्राज्यवादी शासन चक्र का एक पुर्जा थे ! उन्हे इस तरुण की यह उच्चाभिलाषा अच्छी नही लगी। उन्होने एक दिन उसे बुलाकर कहा—"देखो, तुम क्लास में निर्धारित पाठ्यक्रम से अधिक मत बताया करो। हाँ, तुम स्वय जितना चाहो पढो, मै तुम्हे हर तरह का सुभीता देने को तैयार हूँ।"

इस ग्रामीण तरुण को राजनीतिक उलझनो का ज्ञान तो उस समय नहीं-सा था, मगर प्रिंसिपल का यह आदेश उसे अच्छा नही लगा। निदान, उसने एक दिन नौकरी से इस्तीफा द दिया और चाकलेटर, वटन, डब्बा जैसी छोटी छोटी चीजे

खुद बनाना शुरू किया। उस वक्त इन चीजों की खपत के लिए उसे काफी मेहनत करनी पड़ती थी। इसलिये उसने एक साइकिल खरीदी। उस जमाने में साइकिल रखना भी एक महत्त्व की बात समझी जाती थी। निश्चय ही, इस साइकिल की खरीद और छोटी लागत के व्यवसाय के आरम्भ में ही उसकी कुल संचित निधि निःशेष हो गयी। दैव-दुर्योग से उसी समय, १८६६ ई० के लगभग उसे प्लेग भी हो गया और स्वास्थ्य-हानि के साथ ही उसका यह छोटा-मोटा धंधा भी बिलकुल समाप्त प्राय हो गया।

मगर आपको आश्चर्य होगा कि वही आत्मनिष्ठावान्, कर्तृत्वशील एवं आकर्षण-हीन तरुण आज कई उद्योगों का संस्थापक है, जिनमें हल-निर्माण से लेकर पत्र-प्रकाशन तक शामिल हैं। वह उद्योग-महर्षि के रूप में हर महाराष्ट्रीय परिवार में समादृत है तथा भारत के उन मान्य उद्योगपतियों में अपना अलग स्थान रखता है जिनके लिए 'परोपकाराय सतां विभूतयः' (सज्जनों की विभूतियाँ परोपकार के लिए हैं) की उक्ति पूर्णतः लागू होती है।

इस ८४ वर्षीय उद्योग-महर्षि का नाम है, श्री लक्ष्मण काशीनाथ किर्लोस्कर अथवा श्री लक्ष्मणराव किर्लोस्कर।

अभी हाल ही अगस्त १९५३ में 'मराठा चेम्बर ऑफ कामर्स एण्ड इण्डस्ट्रीज' ने श्री किर्लोस्कर के सम्मान में एक अभिनन्दन-समारोह मनाया था, जिसमें उनको 'किर्लोस्कर'

कारखाने में बनने वाले हल की एक रौप्य-प्रतिमूर्ति तथा उनके स्वयं की एक रौप्य-प्रतिमा भेंट की गई थी।

इस अभिनंदन समारोह के अध्यक्ष-पद से भाषण देते हुए सर एम. विश्वेश्वरैया ने लक्ष्मणराव के अथक परिश्रम, असीम कार्यशक्ति और अजेय बुद्धि कौशल की भूरि भूरि प्रशंसा करते हुए कहा था—"लक्ष्मणरावजी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे किसी काम को दूसरे पर नहीं छोड़कर स्वयं करते हैं।" इस कथन की यथार्थता प्रमाणित करने के लिए इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि, आज भी इस बुढ़ापे में जब कि, उनके पुत्र-पौत्रों, सम्बन्धियों तथा कारखाने में काम करने वाले कुशल कर्मचारियों की एक बड़ी फौज वर्तमान है, किसी मशीन में खराबी हो जाने पर 'पप्पा' (सभी उनको स्नेह-श्रद्धावश पप्पा कहते हैं) स्वयं छेनी-हथौड़ी लेकर दुरुस्त करने पहुँच जाते हैं।

'किर्लोस्कर वाड़ी' (यही उनके औद्योगिक नगर का नाम है) आज महाराष्ट्र में 'टाटापुरम्' से कम महत्व नहीं रखता। 'किर्लोस्कर वाड़ी' के नामकरण तथा वहाँ कारखाना-निर्माण की भी एक मनोरंजक कहानी है। उपरिकथित प्लेग से छुटकारा पाने पर लक्ष्मणराव को बम्बई का जीवन अच्छा नहीं लगा। अतः वे बेलगांव चले गये। बेलगांव में उन्होंने साइकिल की एजेंसी ली और साथ ही साइकिल-मरम्मत तथा साइकिल चलाने की शिक्षा देने का धंधा भी शुरू किया। इस धन्धे की वजह से उनका बेलगांव के प्रायः सभी

बडे बडे अंग्रेज-अफसरो, राजकुमारो तथा सेना के उच्चाधिकारियो से परिचय हो गया। उनकी मदद से उनका धधा काफी बढा और कुछ दिनो बाद उन्हे अपनी छोटी-सी दूकान को बडे कारखाने का रूप देने की जरूरत आ पडी। इसलिए अब वे अपना कारखाना शहर से तीन मील दूर फौजी छावनी के पास ले गये। धीरे धीरे उन्होंने अपने कारखाने में पवन चक्की तथा लोहे के हल बनाना भी शुरू किया।

इसी समय औंध के राजा साहब के यहाँ कोई समारोह था और उस सिलसिले में सभा-मडप बनवाना था। इसके लिए लक्ष्मणराव नियुक्त किये गये। इस काम को उन्होने इतनी जल्दी और खूबी से किया कि राजा साहब आश्चर्य-स्तब्ध रह गये। प्रसन्न होकर उन्होने लक्ष्मणराव को अपना कारखाना औंध रियासत के 'कुडलरोड' नामक जगह पर लाने की मजूरी दे दी। बेलगाव-नगरपालिका इसी साल छावनी-स्थित इनके कारखाने को वहाँ से हटाने का आदेश भी दे चुकी थी। मौका अच्छा था, लक्ष्मणराव ने राजा साहब का प्रस्ताव मान लिया। राजा साहब ने कारखाना बनाने तथा बस्ती बसाने के लिए १० हजार रुपये भी दिये। नगरपालिका ने भी मुआवजे के रूप में चार हजार रुपये दिये। बस, अब क्या था—लक्ष्मणराव नये नगर-निर्माण में जुट गये। थोडे ही दिनो में लक्ष्मणराव की उच्चाभिलाषा का साकार प्रतीक यह औद्योगिक नगर बनकर तैयार हो गया। आज किर्लोस्कर

वाडी एक आदर्श एव स्वच्छ सम्पूर्ण नगर है तथा अपनी आवश्यकता की सारी वस्तुएँ स्वय तैयार करता है।

सन १९२० में 'किर्लोस्कर बन्धु' नामक यह वैयक्तिक व्यापारी-संस्था सुचारु कार्य संचालन के लिए मर्यादित (लिमिटेड) सस्थान बना दी गई। आज किर्लोस्कर बन्धु के कई उद्योग हैं—किर्लोस्कर बधु लि०, किर्लोस्कर वाडी, मैसूर किर्लोस्कर लि०, किर्लोस्कर इलेक्ट्रिक क० लि०, बगलोर तथा किर्लोस्कर आयल एजिन्स लि०, खडकी (पूना)। इन सबके अतिरिक्त और भी कई छोटे मोटे उद्योग हैं।

लेकिन उद्योग महर्षि का कर्तृत्व केवल लोहे लक्कड तक ही सीमित नही है, महाराष्ट्र की सर्वाधिक पठित एव समृद्ध मासिक पत्रिका 'किर्लोस्कर' तथा उसी के दो सहयोगी पत्र 'स्त्री' और 'मनोहर' उनकी राष्ट्रनिर्मात्री विद्याप्रियता के ज्वलत प्रतीक हैं। 'किर्लोस्कर' मराठी का सबसे पुराना मासिक पत्र है।

अपने व्यक्तिगत जीवन में श्री किर्लोस्कर बडे स्नेहशील, स्वतत्रता प्रिय, निराभिमानी एव समत्व-भाव के प्रबल समर्थक हैं। उनके समत्व-प्रेम का सबसे बडा उदाहरण है कि, गणेश चतुर्थी एव किर्लोस्कर-वाडी के स्थापना-वर्षोत्सव पर भगी से लेकर अपने बेटे जमाई तक को वे एक ही तत्परता से सम्मानित करते है। और, पर्व या उत्सवो तक ही इस समत्व भाव को सीमित क्यों रखा जाय ? वाडी का प्रत्येक प्राणी उनके लिए पुत्रवत् है—सब पर वे समान स्नेह की छाया देखकर ही सतोष

लाभ करते हैं। स्वदेशी के आप अनन्य भक्त हैं और भरसक सबको स्वदेशी वस्तुओं के व्यवहार की सलाह दिया करते हैं।

लक्ष्मणरावजी अपने सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक तरुण को कहते हैं–"जो काम करो, पूरी निष्ठा से करो। यही उन्नत जीवन का मूलमन्त्र है। हाँ, इसका हमेशा ध्यान रखो कि तुम्हारा कोई भी कार्य राष्ट्र-गौरव के विरुद्ध न हो।" स्वयं लक्ष्मणरावजी ने अपने इसी कथन को अपने जीवन का मूलमन्त्र बनाया है।

वस्तुतः इस ८४ वर्षीय वृद्ध को देखकर आप प्रत्यक्ष अनुभव करेंगे कि आपके समक्ष अदम्य कार्य-निष्ठा, प्रबल इच्छा-शक्ति व अक्षुण्ण देश-भक्ति का ज्वलंत गौरव-प्रतीक उपस्थित है। एक संस्कृत उक्ति है—

"उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी।"

अर्थात् उद्योगी पुरुष-सिंह के पास ही लक्ष्मी आती है। और, लक्ष्मणरावजी इस उक्ति के प्राणवन्त पूरक-प्रतीक हैं। ‡

---

‡ मराठी 'सम्पदा' के आधार पर लिखित और 'नवनीत' नवम्बर १९५३ से साभार उद्धृत।

केलेवाला करोड़पति

सेम्युअल भेमुरे

"बिना बोले पूछे नहीं, बोले सो पतियाय" की कहावत के अनुसार बोलने वाला व्यक्ति करोड़ों रुपये कमा सकता है। और उसके जीवन में भी यही हुआ। अमेरिका के एक बड़े शहर-न्यूजर्सी में एक स्टेशन के अहाते में बहुत अधिक केले गल रहे थे। केले अच्छी जाति के थे। ऊपरी आवरण भी इतना सुन्दर था कि आँखें नहीं ठहरती थी। उनमें से कुछ पर काले दाग पड़ने लगे।

स्पष्ट था कि समय न गँवाकर चुनने पर अभी भी अधिक मात्रा में उत्तम केले निकल सकते थे। एक युवक खड़ा यह देखता था। "यदि मेरे समीप डेढ़ सौ डालर होते?" मन ही मन वह बोला, किन्तु केवल कल्पनामात्र से ही पैसे नहीं प्राप्त किये जा सकते। सेम्युअल (वह व्यक्ति सेम्युअल भेमुर ही था) केवल शेखचिल्ली ही न था। शेखचिल्ली जैसे विचारों के साथ ही वह हेनरी फोर्ड तथा एण्ड्रू कार्नेगी के समान व्यावहारिक महत्वाकांक्षा भी रखता था।

प्लेटफार्म पर टहलते हुए गाड़ी में चढ़ने और उतरने वालों को देखते-देखते वह अचानक रुक गया। उसने कोई युक्ति सोच ली थी। वह शीघ्र ही 'गुड्स यार्ड' की ओर अग्रसर हुआ।

"नमस्ते महाशय !" वहाँ के अधिकारी को उसने नमस्कार किया। 'महाशय, क्या मैं कुछ पूछ सकता हूँ ?" सेम्युग्रल ने याचना भरे शब्दो में प्रश्न किया।

"पूछिये", अधिकारी ने अपने सौजन्य से उसके हृदय में आशा का सचार किया।

"उस ओर के प्लेटफार्म पर के सब केले कल तक नष्ट नही हो जायेंगे ?" सेम्युग्रल ने आरम्भ किया।

"अर्थात् ?" अधिकारी ने पूछा।

"इससे मालिक का बहुत नुकसान होगा।"

"हाँ, मालिक के साथ रेल्वे का भी", अधिकारी ने कहा।

'फिर आप उन्हे बेच क्यो नही देते?", सेम्युग्रल ने पूछा।

"खरीदने वाला भी तो मिलना चाहिए"।

'मेरी एक प्रार्थना है। वैसे भी वे केले नष्ट हो ही जायेंगे। मुझे उन्हें बेचने का एक अवसर दिया जाय।" सेम्युग्रल ने कहा।

"सब केले बिकने पर डेढ सौ डालर देना होगा, शर्त मजूर है ?", अधिकारी ने पूछा।

"स्वीकार है, किन्तु मेरी एक और प्रार्थना है।"

"वह कौनसी ?" खेदपूर्ण मुद्रा में अधिकारी ने पूछा।

"इन केलों को साढे तीन की गाडी पर चढाने की व्यवस्था की जाय और आगे के स्टेशन के दलाल को फोन द्वारा सूचना दे दी जाय।" उसने कहा।

"ठीक है", एक भार की कमी अनुभव करते हुए अधिकारी ने कहा। ''''''और साढे तीन की गाडी से आगे रवाना हुए केले के डिब्बे में बैठकर जाने से सेम्युअल को यात्रा खर्च भी नही देना पडा। गाडी जब तक ठहरी तब तक उसने ५० डालर के केले बेचे।

इस प्रकार चतुराई और मीठी बातो से सेम्युअल ने अपने पहले दिन के केले के व्यापार में लाभ उठाया। उस दिन उसने सब केले बेच दिए, रेल्वे को पैसे चुकाये, मालिक को पैसे दिये तथा लगभग ३५ डालर का लाभ उठाया। अपने देश में भी सिन्धी, पजाबी आदि निष्कासित लोग इसी प्रकार का व्यापार करते है। नौकरी करने की तो वे कल्पना भी नही करते।

व्यापार का श्री गणेश

कहते है सेम्युअल को बाल्य-काल से ही व्यापार-वृत्ति प्राप्त थी। १८६५ में पन्द्रह वर्ष की आयु में वह अनाथ हो गया। उसके पिता वेस अरेबिया के गरीब किसान थे। शिक्षा उसे मिली ही नही। आठ वर्ष की आयु से ही वह काम पर जाने लगा। उस समय उसे लगभग ४ डालर वेतन मिलता था। इसके बाद वह अपनी माता के साथ अमेरिका आया। उसकी माता स्पेनिश थी तथा वह स्वय ज्यू (जिऊ) जाति का है। स्पेनिश भाषा उसे बहुत पसन्द है। उसने अपना व्यापार मेक्सिको, फिजी द्वीप और मयक्त राष्ट्र के दक्षिण के राज्यो में फैलाया। न्यूआर्लियन्स में तो उसका विलक्षण

प्रभाव है। यूनाइटेड फ्रूट कम्पनी की भव्य और विशाल इमारत यही है । सन् १९५० में उस कम्पनी ने कुल ६,६०,००,००० डालर (लगभग ३,३००,००,००० रुपये) लाभ मे प्राप्त किये। इस कम्पनी में आज ८४,००० से अधिक मनुष्य काम करते हैं।

बचपन से ही उसे स्वय विचार करने की, निर्णय करने की तथा कष्ट उठाने की आदत पड गई थी। उसने अपनी पत्नी का चुनाव भी अजीव ढग से किया। उसे कोई भी एकान्तिक विचार पसन्द नही। 'ए बिट आफ बोथ' का ध्येय ही उसने अपनी पत्नी के चुनाव में अपने सम्मुख रखा था।

जब २२ वर्ष की आयु में सेम्युअल ज़ेमुरे का विवाह हुआ तब बैंक में (१९१० में) उसके १०,००,००० से भी अधिक डालर थे।

कष्ट के समय आगे-पीछे न देखने वाला सेम्युअल आनन्द के समय आनन्द भी खूब लेता था। १९१६ से १९१८ तक वह अमेरिकन सेना में था। उसकी पत्नी एवालिन भी उसके साथ ही युद्ध-कार्य मे प्रवृत्त हुई। उसने वहाँ दिल लगाकर काम किया। फलत वह शीघ्र ही घायलो तथा सैनिको में प्रसिद्ध हो गई।

सब दिन समान नही होता। उसके एकत्र किए हुए १०,००,००० डालर तथा दूसरो से कर्ज निकाल कर लाये उतने ही डालर उसने खो दिये। उसके प्रतिद्वंदियो ने उसे

केले न मिलने देने की योजना में सफलता पाई। सेम्युअल पुन भिक्षुक हो गया।

किन्तु परिस्थितियो के सम्मुख न झुकने वाले ही आगे चलकर बडे होते है। सेम्युअल के भाग्य में बडा होना लिखा था। वह एकाकी न था पत्नी तथा दो बच्चे साथ थे। लड़के शिक्षा पा रहे थे किन्तु इस अकस्मात् आई हुई विपत्ति से उनकी शिक्षा बन्द हो गई। सेम्युअल घबराया नही उसने तथा उसकी पत्नी ने केले खाने की नई पद्धति आरम्भ की। उसने कर्ज निकाल कर 'नविस्को ब्रेन' नामक कम्पनी खोली। उन्होने प्रचार किया कि छिलके सहित काटा गया आधा केला खाना बडा पुष्टिकारक होता है। उसने छिलका पकाने के लिए प्रेस कुकर को काम में लाने की सलाह दी और एक नया खाद्य पदार्थ तैयार किया।

इन सब बातो का एक ही समय उपयोग करने का अच्छा नतीजा निकला। उसके पास धीरे-धीरे पूंजी एकत्र होने लगी। उसने 'यूनाइटेड फ्रूट कम्पनी' की स्पर्धा करना निश्चित किया। उसने पहले ५,००० एकड न जुतने वाली जमीन किराए पर ली। उस पूरी जमीन में केले का बगीचा लगा दिया। केले के वृक्षो को बीमारियां भी होती थी। इसलिए उसने इन बीमारियों को दूर करने का पता लगाया। उसने सबसे बड़ा काम यह किया कि जो कम्पनियां उसके व्यापार में बाधक थी, उनके उसने शेयर खरीद लिये और उन्हे अपनी कम्पनी मे मिला लिया।

अपना कार्य बेरोक टोक करने के लिए वह उस राज्य की कौंसिल में निर्वाचित हो गया। वह दो वर्ष तक अमेरिकन मन्त्रिमंडल में भी था।

उसने करोडो रुपये कमाये और अमेरिकन दानवीरो की परम्परा के अनुसार उसने करोडो रुपयो का दान भी दिया। उसने न्यूम्रार्लियन्स की 'चाइल्ड क्लिनिक' सस्था को ३,८०,००० डालर दान दिए। उस सस्था की भव्य इमारत देखते ही उसकी सौंदर्य प्रियता और दानवीरता का अनुमान हो जाता है। जिस विद्यापीठ में उसका लडका विद्या पा रहा है, उस विद्यापीठ को उसने अभी हाल ही में १,००,००० डालर का दान दिया है।

हमेशा पैसा कमाने की धुन वाले सेम्युअल को फिड्ल बजाने का भी बहुत शौक है। कभी कभी उसके वायोलिन बजाने के कार्यक्रम भी होते है। उसे दूसरा शौक चित्रकला का है। खाली समय में वह कही भी दूर चला जाता और अपने देखे हुए दृश्य का चित्र खीचता। सेम्युअल केले की पीड के छिलको से बात ही बात में अनेक कलापूर्ण वस्तुएँ बना लेता है।

अब उसकी अवस्था ७० से ऊपर हो गई है, फिर भी वह एक तरुण की तरह प्रति दिन १२-१२ घण्टे काम करता है। उसका केवल पैसा कमाने का ध्येय कभी भी नही रहा। उसके जीवन के अनेक पहलू है। कोई भी यह चाहेगा कि भारत में ऐसे करोडपति उत्पन्न हो। ‡

डा० नावकृष्ण महेश्वर कानिटकर

‡ 'उद्यम' से साभार

प्रो० के० टी० शाह

प्रो० के० टी० शाह का पूरा नाम खुशाल तकलशी शाह था। आपका जन्म ई० स० १८८८ के अगस्त की दसवीं तारीख को कच्छमाण्डवी के एक जैन परिवार में हुआ था। आपके सात भाई थे जिनमें सबसे छोटे आप ही थे।

प्रो० शाह की प्रारम्भिक शिक्षा माण्डवी में हुई। इसके बाद ये अपनी शिक्षा के लिए बम्बई गये। बम्बई के न्यू हाई-स्कूल से इन्होंने मैट्रिक परीक्षा पास की। सन् १६१० में सेण्ट जेवियर कालेज से इन्होंने बी० ए० पास किया। इसके बाद ये बैरिस्टर हुए और इन्होंने १६१४ में लंदन स्कूल आफ् इकनामिक्स की जी० एम० सी० उपाधि प्राप्त की। १६१४ में ये विलायत से वापिस हिन्दुस्तान आ गये।

भारतवर्ष वापस आने पर ये तुरन्त ही सेण्ट जेवियर कालेज में अर्थशास्त्र के लेक्चरर नियुक्त हुए। वहाँ से ये सिडनहाम कालेज चले गये। इसके बाद मैसूर के महाराना कालेज में ये अर्थशास्त्र के प्रोफेसर नियुक्त हुए। मैसूर से ये बम्बई वापिस आ गये और इन्होंने एक व्यापारी कम्पनी में काम किया। साथ ही साथ बम्बई विश्वविद्यालय की ओर से स्कूल आफ् इकनामिक्स और समाज-शास्त्र (Sociology) के लिए प्रयत्न करते रहे और ज्योंही उसकी स्थापना हो गई,

ये उसके सचालक बने । इनके कार्य से प्रभावित होकर अफ़गानिस्तान सरकार ने उन्हे अपना आर्थिक और वित्त-सम्बन्धी परामर्शदाता बनने के लिए निमन्त्रित किया जिसे उन्होंने सधन्यवाद अस्वीकृत कर दिया। इसका कारण यह था कि इनकी इच्छा विश्वविद्यालय की सेवा में ही रहने की थी ।

पहली गोलमेज कॉन्फ्रेंस के समय इन्हे भारत के अधिकारियो और नरेन्द्र-मण्डल की ओर से आर्थिक और राजकीय मामलो में सलाहकार नियुक्त किया गया । दूसरी गोलमेज कॉन्फ्रेंस के समय भी गांधीजी ने इन्हे सलाहकार रखा। गांधीजी अर्थशास्त्र और शिक्षा-सम्बन्धी प्रश्नों पर इनके विचारों का बहुत आदर करते थे। वर्धा शिक्षण-योजना की रूपरेखा तैयार करने में भी इन्होंने बहुत सहायता प्रदान की थी । १९३७ में जब कि कांग्रेस के अध्यक्ष श्री सुभाषचन्द्र बोस थे, इन्हें राष्ट्रीय आयोजन समिति का मन्त्री बनाया गया था । इनका झुकाव समाजवादी विचारो की ओर था । वे निर्भीक और स्वतन्त्र विचारक थे। ये व्यक्ति-स्वातन्त्र्य के पक्षपाती थे और इसीलिए ये भी राष्ट्रपति-पद के लिए उम्मीदवार होकर खड़े हुए थे । ये जानते थे कि उनकी हार होगी परन्तु उनका यह सिद्धान्त था कि लोकशाही राज्य में कोई भी निर्वाचन बिना प्रतियोगिता के नही होना चाहिए। डा० राजेन्द्रप्रसाद कांग्रेस-पक्ष के थे, इसलिए प्रो० शाह चाहते थे कि राष्ट्रपति ऐसा व्यक्ति हो जो किसी पक्ष का न हो ।

चीन कामदार महामण्डल ने प्रो० शाह को चीन आने का निमन्त्रण दिया । ये चीन में ६ सप्ताह रहे । चीन में रहने

के बाद साम्यवाद में इनकी श्रद्धा बढ़ गई। ये मानने लग गये कि साम्यवाद के बिना मानव-जाति का कल्याण असंभव है।

प्रो० शाह ने Sixty years of Indian Finance से लेकर Promise that is Now China तक लगभग ३६ पुस्तकें लिखी। इन पुस्तकों में से इनकी एक महत्वपूर्ण पुस्तक है 'Splendour that was Ind" इन्होंने गुजराती में कुछ नाटक और उपन्यास भी लिखे हैं जो पुस्तक रूप में प्रकाशित नहीं हुए हैं।

प्रो० शाह का अंग्रेजी भाषा पर अच्छा अधिकार था। उन्होंने अपने हाथ के नीचे अनेक अर्थशास्त्रियों को तैयार किया। देश के नेता और राजा-महाराजा सभी इनसे आर्थिक मामलों में सलाह लिया करते थे। ये मानव-समानता के बड़े हिमायती थे।

प्रो० शाह का जन्म एक गरीब घराने में हुआ था। दूर की सम्बन्धी एक विधवा के घर में इनको आश्रय प्राप्त हुआ था। इन्हें अपने जीवन में बहुत से कष्टों का सामना करना पड़ा किन्तु इन्होंने धैर्य को कभी अपने हाथ से नहीं जाने दिया। कष्टों का इन्होंने मुकाबला किया और उन पर विजय प्राप्त की। प्रो० शाह उन अध्यवसायी और बुद्धिमान व्यक्तियों में से थे जो अपने साहस और बल से अपना मार्ग प्रशस्त कर लेते हैं। इसीलिए वे सभी के आदर-पात्र बने। कांग्रेस भी जब जब अपने सिद्धान्त या कार्यक्रम से विचलित हुई, आपने उसकी कड़ी आलोचना और टीका—टिप्पणी की। प्रो० शाह अप्रिय सत्य कहने में भी चूकते नहीं थे।

गुजरात से हमारे देश को जो महान् प्रतिभाशाली व्यक्ति प्राप्त हुए हैं उनमें प्रो० के० टी० शाह भी एक थे। यद्यपि वे एक प्रसिद्ध अर्थशास्त्री थे तो भी राजनीति, राष्ट्रीय आयोजन, वित्त, शिक्षा, कला, साहित्य आदि कोई भी महान् सेवा का क्षेत्र उनसे अछूता न रहा। देश के संविधान बनाने में भी उनका बहुत बड़ा हाथ है। प्रथम पचवर्षीय योजना के निर्माण मे भी उनका योगदान अत्यन्त बहुमूल्य था।

६ मार्च १९५३ की शाम को ५ बजे प्रो० शाह के हृदय में एकाएक दर्द उठा। उनको ऐसा दर्द १९४३ और १९५२ में हुआ था परन्तु इस बार उसने इनकी जान लेकर छोड़ी।

प्रो० शाह के निधन से भारत का एक बड़ा अर्थशास्त्री उठ गया। मृत्यु के समय प्रो० शाह की अवस्था लगभग ६५ वर्ष की थी। अपने विद्यार्थी जीवन से लेकर मृत्यु पर्यन्त प्रो० शाह अर्थशास्त्रीय ज्ञान की साधना और देश सेवा के कार्यों में निरन्तर लगे रहे। जो व्यक्ति अपने लक्ष्य की सिद्धि के लिए अनवरत प्रयत्न करता है, उसी का जीवन सफल समझना चाहिए।

भोर के नगर-सेठ नाना साहेब थोपटे

गगा जैसी प्रचण्ड नदियो का उद्गम ऊँचे लम्बे पर्वतो में हाथ की उँगली के बराबर लघु जल धारा में होता है। आज लाखो रुपयो में खेलने वाले भोर के सुप्रसिद्ध ठेकेदार नाना साहब सन् १६०२ में, अपनी आयु के तेरहवें वर्ष में, तीन रुपये मासिक वेतन पर चुगी की चौकी पर नौकर हुए थे। इनका मूल घराना ऐतिहासिक है। इनके पूर्वज सिन्दोजी राव, सन् १७०४ में राजगढ दुर्ग में सर नौबत के उच्च पद पर आरूढ थे। उनके कुटुम्ब में यह उपाधि अब तक चली आ रही है। अब तक भी उनका रिश्ता-नाता बडौदा के राज-घराने से होता है। परन्तु इस घराने की आर्थिक स्थिति बिगड जाने से अन्त को श्रीयुत नाना साहब के बचपन में उनके पिता एक बहुत निर्धन किसान होकर ही रह गये थे। उस दरिद्रता में ही भाइयो भाइयो में बाँट हो गई। इसीलिए श्री नाना साहब को पाठशाला छोड कर एक चुगी की चौकी पर तीन रुपये मासिक पर नौकरी कर लेनी पडी।

दरिद्रता के कारण मुझे पढाई छोडनी पडी है, यह बात नाना साहब के मन में बहुत चुभी। उस दरिद्रता की जड उखाड डालने का ही उन्होने निश्चय कर लिया। चुगी की चौकी पर अपना काम करके ही वे सन्तुष्ट नही हो जाते थे।

सड़क पर से प्रति दिन माल के कितने छकड़े जाते हैं, वे कितने में नीलाम होते हैं, ठेका कितने में खरीदने से मुझे घाटा नहीं उठाना पड़ेगा और रुपये का लेन-देन किस साहूकार से करना ठीक होगा, इत्यादि बातों पर उन्होंने बड़ी बारीकी से विचार किया। उनकी वाणी मीठी है। वे कभी भी किसी को झिड़क कर या तिरस्कारपूर्वक नहीं बोलते। जिस काम को कर सकने का उन्हें पूरा विश्वास होता है, उसी का वे वचन देते हैं। इस नियम का पालन करने से उनके वचन का बड़ा मूल्य हो गया है।

अपने पास काम चलाने के लिए पैसा हो जाने पर सत्रह वर्ष की आयु में श्री थोपटे ने, जिस बालन्द्रे नामक गाँव में टोल के नाके पर वे मजदूरी किया करते थे, उसी चुंगी की चौकी का ठेका नीलाम में ले लिया और अपने स्वतन्त्र कार्य का आरम्भ कर दिया।

पर कर्म-गति विलक्षण होती है। श्रीयुत नाना साहब ने नीलाम की बोली देने के पूर्व सारा हिसाब लगा लिया था, परन्तु उसी वर्ष महाराष्ट्र पर दुर्दैव से एक बड़े टिड्डी-दल का आक्रमण हो गया। सारी फसल नष्ट हो गई। छकड़ों में लाने के लिए अन्न ही नहीं बचा। इसका परिणाम चुंगी की चौकी की आय पर भी पड़ा और आरम्भ में ही उनको ठोकर लगी।

कोई साधारण मनुष्य होता तो ऐसी अवस्था में हाथ पर हाथ धर कर बैठ जाता। इसके लिए उसको कोई चिन्ता भी न करता।

श्री नाना साहब की परीक्षा का यही समय था। उन्होंने एक दूसरी चौकी (रामबाग) का ठेका लेकर अपने घाटे को पूरा करने का प्रयास किया।

इस संकट से निकल जाने पर श्री थोपटे ने बड़े उत्साह के साथ विभिन्न चुंगी की चौकियों और मादक वस्तुओं के ठेके ले लिये। फिर उन्होंने सम्रल्लुका प्रचण्डगढ धनगर महाल के जंगलों के ठेके लिए। सन् १६१४ तक ऐसा ही चलता रहा। अब श्री थोपटे को इन छोटे-मोटे ठेकों का काम थोड़ा लगने लगा। उनकी बढ़ती हुई महत्वाकांक्षा के लिए अनुकूल क्षेत्र शीघ्र ही मिल गया। उस वर्ष बम्बई सरकार भोर के निकट भाट घर का सुप्रसिद्ध नवीन बांध बनवाने लगी थी। पैसा कम होने से थोपटे ने पहले छोटे-छोटे सब कण्ट्रैक्ट लेना प्रारम्भ किया। ईमानदारी और सचाई से काम करने के कारण अधिकारियों का उन पर विश्वास बन गया। उनकी सहायता से श्री थोपटे को बांध में लगने वाले पत्थर की खान का ठेका मिलने में सुभीता हो गया।

पत्थर का ठेका मिलने पर ही श्री थोपटे सन्तुष्ट होकर नहीं बैठ गये। बांध पर पत्थर पहुँचाने के बाद वे व्यर्थ इधर-उधर नहीं घूमते थे। राजगीरी के काम के छोटे-छोटे ठेके लेने वाले लोग एस्टीमेट कैसे तैयार करते है और मजदूर से कैसे काम कराते है, इन सब कामों को वे ध्यान से देखा करते थे। अंत में एक दिन पीस वर्क कण्ट्रैक्ट लेने का अपना विचार उन्होंने अधिकारी वर्ग पर प्रकट कर दिया।

जिनकी मराठी शिक्षा तीसरी कक्षा तक ही हुई थी, जिन्हे गणित नही आता, ऐसे मनुष्य को कोई काम सुपुर्द करने के पहले बाँध के इजीनियरो को उस मनुष्य के कर्तृत्व के सम्बन्ध में विश्वास होना आवश्यक होता है। बाँध का काम बडी ईमानदारी का होना चाहिए, यदि वह काम किसी जगह कच्चा रह जाये, यदि असावधानी के कारण निकम्मा माल लगा दिया जाय तो बाँध टूट जायगा और सैकडो मील चौरस भूमि जल-मग्न हो जायगी। यद्यपि श्री थोपटे को थोडी भी शिक्षा नही मिली थी, तो भी उन्होनें ऐसे विश्वासपात्र मनुष्य इकट्ठे कर लिये जिन पर देख भाल रखने की आवश्यकता न थी, उन्ही के बल पर उन्होने छोटे-छोटे ठेके ले लिए। आगे चल-कर सारे बाँध के काम के एक तिहाई भाग का ठेका उन्ही के हाथ आ गया।

यहाँ कुछ आँकडे दिए बिना श्री थोपटे के काम की प्रचण्डता की कल्पना करना कठिन है। यह बाँध बाँधने का काम सन् १९१४ से प्रारम्भ होकर सन् १९२८ तक जारी रहा। बाँध के निर्माण के व्यय का एस्टीमेट पौने दो करोड रुपया था। बाँध की लम्बाई ५३३३ फुट, नीव की गहराई १२५ फुट, धरती के ऊपर चौडाई २३ फुट, पानी की गहराई १४३ फुट और पानी की झील की लम्बाई १७ मील है। जिस समय यह काम चल रहा था, उस समय श्री थोपटे के पास दो सहस्र मजदूर काम करते थे। उनकी उस कार्यकुशलता के कारण मुलशी भाग के बाँध के काम का ठेका भी सन् १९२७ में

उनको मिल गया । यह बाँध का काम चल ही रहा था कि श्री योपटे ने अपना काम दूसरे क्षेत्रों में भी फैलाना आरम्भ कर दिया। सन् १६२३ में उन्होंने वसरापुर वेल्हे, प्रचण्डगढ, तोरण किला इस रास्ते को तैयार करने का ठेका ले लिया। वैसे ही भोर वरन्धर घाट महाड का भी रास्ता तैयार करने का अति विकट काम उन पर आ पडा था।

श्री योपटे की दृष्टि आधुनिक है। इसलिए वे इस बात को अचूक रूप से ताड लेते हैं कि कौन धन्धा बढने वाला है। उन्हीं दिनों मोटर सर्विस का धन्धा आरम्भ हो गया था। मोटर सर्विस का यह धन्धा नया होने से उन्होंने कई जगह रुपया लगाकर मोटर-सर्विस आरम्भ कर दी। जिन रास्तों पर इनकी मोटर सर्विस थी, उनको ठीक करने का ठेका भी नाना साहब योपटे ने ही ले लिया। आगे चलकर जब और बहुत से लोग इस धन्धे में आ कूदे और प्रतिद्वन्द्विता बढ गई तो सन् १६३३ में उन्होंने यह धन्धा बन्द कर दिया।

परन्तु जिन लोगों को उद्योग करने का व्यसन लग जाता है उनको निकम्मा बैठने में कष्ट होता है। श्री नाना साहब ने नये-नये धन्धे आरम्भ किये और उनमें भी अपनी आधुनिक दृष्टि से काम लिया। भोर राज्य में उन्होंने स्थान स्थान पर धान छडने की मशीनें लगाईं। इससे जहाँ नाना साहब को पैसे की प्राप्ति हुई, वहाँ जनता को भी सुभीता हो गया।

इसके बाद उन्होंने एक बहुत बडे धन्धे में हाथ डालने का साहस करने का निश्चय किया। आज का युग बिजली का

युग है। उसका क्षेत्र भी बहुत विस्तृत है। यह जानकर इस नवीन उद्योगमें उन्होने हाथ डाला। भाटघर का पावर हाउस अभी बना ही था। उस पावर हाउस की सारी बिजली खरीद लेने का उन्होने निश्चय किया। भोर के श्रीमन्त राजा साहब की भोर नगर को विद्युन्मय करने की इच्छा थी। थोडे ही समय में भोर जैसे छोटे नगरमें चारो ओर बिजली ही बिजली हो गई। इस बिजली के पावर हाउस के उद्‌घाटन समारम्भ के समय बम्बई के गवर्नर महोदय ने मुक्त कण्ठ से श्री थोपटे की प्रशसा की। भोर नगर के लिए जल्दी ही सन् १९३४ में एक भव्य पावर हाउस बन गया। इसके बाद सन् १९३७ में थोपटे ने जुन्नर में इलेक्ट्रिक सप्लाई कम्पनी चलाई और वहाँ वाटर वर्क्स (जल कल) का काम भी पूरा किया। इसके बाद सन् १९३८ में उन्होने महाडमें तीसरी इलेक्ट्रिक सप्लाई कम्पनी स्थापित की। इस कम्पनी की मैनेजिंग एजेन्सी की फर्म में श्री श्रोत्र उनके साथ भागीदार है।

धाट घर के हाइड्रॉलिक पावर हाउस में भोर नगर की आवश्यकता से अधिक जो फालतू बिजली है उसके उपयोग का ठेका नाना साहब ने ले लिया है। भोर से लेकर शिर्वल, नीरा, लोणद नामक ग्रामो तक हाई-टेन्शन लाइन बनाकर इन छोटे-छोटे गाँवो के लिए बिजली का सुभीता कर दिया गया है। यह सब श्री थोपटे के ही विशेष परिश्रम का प्रताप है।

महाड, भोर, जुन्नर के पावर-हाउस यद्यपि छोटे है तो भी उनके काम से सैकडो परिवारो का पोषण हो रहा है। इस

प्रकार आज अनेक वर्षों से सैकडो लोगो की जीविका का साधन थोपटे के उद्योग के कारण उत्पन्न हो रहा है ।

श्री नाना साहब का विचार था कि हाई-टेन्शन लाइन नीरे से लेकर बारामती फलटन तक ले जाएँ । यह योजना सरकार के पास पहुँच कर स्वीकृत भी हो गई थी कि इतने में महायुद्ध छिड गया । अब सामान मिलना कठिन हो गया । इससे यह योजना अभी लटाई में पड़ी है । यह योजना कार्यान्वित हो जाती तो अनेक वाटिका वालों को पम्पिंग की बड़ी सुविधा हो जाती ।

इस प्रकार तीन रुपये मासिक नौकरी से आरम्भ करने वाले श्री नाना साहब थोपटे आज एक अत्यन्त सम्पत्तिशाली व्यक्ति बन गये हैं । इससे यश और वैभव को पैसे की दृष्टि से नही, वरन शारीरिक श्रम, महत्वाकांक्षा और प्रतिकूल परिस्थितियो के साथ सग्राम करने में धैर्य की दृष्टि से देखने से ही श्री थोपटे का वास्तविक महत्व मालूम हो सकता है । छोटे से लेकर बडे तक, मजदूर से लेकर बडे से बड़े सरकारी अधिकारी तक सबके साथ मीठा बोलकर उन्हें सन्तुष्ट करने का अभ्यास श्री थोपटे ने कर रखा है ।

श्री थोपटे का दूसरा विशेष गुण योग्य मनुष्यो को एकत्रित करने की उनकी कला है । इजीनियरिंग तो दूर, साधारण शिक्षा न होते हुए भी उन्होंने केवल नौकरो की सहायता से अपने सारे ठेके पूरे किये है । जिन पर पूरा विश्वास किया जा सकता है और जिनमें काम करने की बुद्धि है, ऐसे मनुष्यो को

एकत्रित करना कोई सरल काम नहीं। श्री थोपटे में मनुष्यों को परखने की अच्छी कला पाई जाती है।

जाति से मराठा, शिक्षा बिलकुल नहीं, ऐसे सज्जन की दैव पर पूर्ण श्रद्धा होगी, ऐसा समझना भारी भूल होगी। दैव हमारा भला या बुरा करता है, इस बात पर उनका बिलकुल विश्वास नहीं। अपना मन ही अपना दैव है। आप स्वयं ही अपने को धनी या निर्धन बनाते हैं, यदि आप अपने मन में ऐसा दृढ़ निश्चय कर लेंगे तो आप चाहे जो कर सकेंगे, तो भी ईश्वर को बिलकुल न मानना भी उपयोगी नहीं। कारण यह है कि ईश्वर का भय हमें सदाचारी बनाये रखने में सहायक होता है। ऐसा ही उनका मत है।

दुर्दम्य महत्त्वाकांक्षा, नवीन दृष्टि, अवसर के आते ही उससे लाभ उठाने की तत्परता, ये तीन बातें श्री थोपटे के उत्कर्ष का रहस्य है। शिक्षा का अभाव यश में बाधक नहीं हो सकता, यह बात श्री थोपटे के जीवन से सीखनी चाहिए। जहाँ इच्छा है, वहाँ मार्ग है, यह कहावत नितान्त सत्य है।‡



‡ श्री सन्तराम बी. ए. द्वारा 'विश्व-ज्योति' से संक्षिप्त और जून १९५३ के 'गुलदस्ता' से साभार उद्धृत।

श्री चिन्तामणि देशमुख

जीवन-वृत्त

श्री चिन्तामणि देशमुख का जन्म सन् १८९६ को १४ जनवरी को बम्बई राज्य के कोलाबा जिले में हुआ। उनके पिता एक वकील थे। बम्बई के ऐलफिस्टन कालेज में शिक्षा प्राप्त करने के बाद श्री देशमुख उच्च शिक्षा के लिए जीसस कालेज, कैम्ब्रिज में भरती होगये। वहाँ सन् १९१७ में आपको औषधि-विज्ञान में फ्रैंक स्मार्ट पुरस्कार प्राप्त हुआ तथा दूसरे वर्ष आपने डिग्री हासिल करली। उसी वर्ष आई० सी० एस० की परीक्षा में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त कर लेने के कारण आपकी बडी ख्याति हुई।

सन् १९३१ की राउण्ड टेबिल कान्फरेंस में श्री देशमुख को संयुक्त मन्त्री का काम सुपुर्द किया गया था। मध्यप्रान्त में आपने अनेक महत्वपूर्ण पदों पर काम किया। सन् १९३९ में आप इण्डिया के रिजर्व बैंक के सेंट्रल बोर्ड के मन्त्री बना दिये गये। सन् १९४१ से सन् १९४३ तक आप रिजर्व बैंक के डिप्टी गवर्नर रहे।

सन् १९४३ में श्री देशमुख रिजर्व बैंक आफ इण्डिया के गवर्नर नियुक्त हुए। बैंक की जटिल समस्याओं को जिस व्यवहार-कुशलता के साथ उन्होंने सुलझाया, उससे उनकी

असाधारण प्रतिभा का पता चलता है। उनकी इतनी प्रसिद्धि हुई कि अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं में अनेक महत्वपूर्ण पदों पर काम करने के लिए उनके पास निमन्त्रण आने लगे। सन १९४४ में आप वन्र्ड मनीटरी कान्फरेंस में सम्मिलित होने के लिए भारतवर्ष की ओर से प्रतिनिधि बनकर गये। सन् १९५० में वित्त-मन्त्री के रूप में आपकी नियुक्ति होने के पहले आप आयोजना आयोग (Planning Commission) के सदस्य थे। सन् १९५० में आप 'इण्टरनेशनल मनीटरी फण्ड' के अध्यक्ष भी थे।

श्री देशमुख जब भारत की केन्द्रीय सरकार में पहले पहल सम्मिलित हुए तो उनका किसी भी राजनीतिक दल से सम्बन्ध नहीं था। सन् १९५१ में सार्वजनिक निर्वाचन होने से पहले वे कांग्रेस पार्टी में शामिल हुए थे।

जब श्री देशमुख प्लानिंग कमीशन के सदस्य थे उस समय उन्होंने पंचवर्षीय योजना की रूप-रेखा तैयार करने में बहुत उपयोगी कार्य किया था। अगर हम यह कहें कि द्वितीय पंच-वर्षीय योजना के निर्माता भी श्री देशमुख ही हैं तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी।

श्री देशमुख अर्थनीति की सम्यक् आयोजना में विश्वास रखते हैं। वे मिश्र अर्थ-नीति के पक्षपाती हैं। आयोजित अर्थ नीति के प्रबल पृष्ठ-पोषक होने के कारण ही एक वार कण्ट्रोल की समस्या को लेकर आपका संसद के कुछ सदस्यों से मतभेद हो गया था। जो भी हो, श्री देशमुख की संसद के

सदस्यो में बडी प्रतिष्ठा हैं और हमारे प्रधान मन्त्री प० नेहरू भी उनका बडा सम्मान करते है।

व्यक्तित्व

भारतीय ससद् के सदस्यो में अधिकाश ऐसे है जिन्होंने राजनीतिक क्षेत्र में कोई काम किया है किन्तु श्री देशमुख अपनी प्रशासनिक योग्यता के बल पर भारतीय ससद म अपना स्थान बनाये हुए है। भारतीय मन्त्रिमण्डल के सदस्यो में से वे ही एक मात्र आई० सी० एस० है। पिछले कुछ वर्षों में भारत में जितने वित्त मन्त्री रहे है, उनमें से सबसे अधिक सफलता श्री चिन्तामणि देशमुख को मिली है। यदि हम ऐसा कह तो इसमें किसी प्रकार की अतिरञ्जना न होगी।

श्री देशमुख धारा प्रवाह भाषण देते है, प्रतिपक्षियो की युक्तियो का खण्डन करने और उन्हे अपने विचारो के अनुकूल बनाने में वे बडे कुशल है। ससदीय रीति नीति, मर्यादाओ और परपराओके आचरणमें वे बडे सतर्क और जागरूक है। उनकी सत्कारिता और बर्ताव व्यवहार मन को मुग्ध करने वाले है।

श्री देशमुख जो वक्तृताएँ देते है, उनमें विनोद का अच्छा पुट रहता है। व्यापक ज्ञान और सयम उनके भाषणो की प्रमुख विशेषताएँ है। अक शास्त्र (Statistics) जैसे रूखे विषयो पर भी जब वे बोलते है तो उनमें भी कभी-कभी वे बीच बीच में शास्त्रो के उदधरण देते चलते है। वाणी की चतुराई और मानसिक शक्ति की तीव्रता की दृष्टि से कम लोग ऐसे होंगे जो वित्त मन्त्री के समकक्ष रखे जा सकें। वित्त मन्त्र

होते हुए भी आपका संस्कृत का ज्ञान श्रोताओं को आश्चर्य में डाल देता है। उलझनों को सुलझाने में आपको कमाल हासिल है। वित्त सम्बन्धी जो समस्याएँ देश के सामने रहती हैं, उनके प्रति जितने जागरूक आप रहते हैं, सम्भवतः कम व्यक्ति अपने अपने विभागों की समस्याओं के प्रति इतने जागरूक रहते होंगे।

श्री देशमुख के व्यक्तित्व में बड़ा आकर्षण है, उनका स्वभाव भी बड़ा मधुर है। जो व्यक्ति उनके सम्पर्क में आते हैं, वे उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहते। श्रीमती दुर्गाबाई भी जो प्लानिंग कमीशन में उनके साथ साथ काम करती थी श्री देशमुख की ओर आकृष्ट हुईं। आप एक प्रमुख सामाजिक कार्यकर्त्री हैं और भारतवर्ष के नारी-आन्दोलनों में न केवल सक्रिय भाग लेती हैं बल्कि आप उनका संचालन भी करती हैं। सन् १९५३ के प्रारम्भ में जब श्री देशमुख ने दुर्गाबाई से विवाह कर लिया तो लोगों के हृदय में आश्चर्य और हर्ष दोनों एक साथ उत्पन्न हुए।

कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनमें अवस्था बढ़ने के साथ-साथ जड़ता आने लगती है और जीवन में उनका रस कम होने लगता है किन्तु श्री देशमुख जैसे प्रतिभाशाली व्यक्ति इसके अपवाद हैं। वे अपना कर्तव्य समझ कर देश के प्रति अपने दायित्वों का भली भाँति निर्वाह करते हैं।

श्री देशमुख जैसे सुयोग्य और अनुभवी वित्त-मन्त्री पर समूचे देश को गर्व है। उनसे हमारे देश के गौरव और प्रतिष्ठा की रक्षा होती है।

हैरी फर्ग्यूसन

हैरी फर्ग्यूसन का जन्म सन् १८८४ में काउण्टी डाउन में हुआ। हेनरी फोर्ड और लार्ड न्यूफिल्ड की भांति वे भी एक कृषक के पुत्र हैं। १६ वर्ष की अवस्था में वे साइकिल और मोटर-कारों की डिजाइन बनाने लगे तथा उन्हें दौड़ाने भी लगे। २५ वर्ष की अवस्था में उन्होंने पहला वायुयान बनाया जिसने ३ मील तक आयरलैंड में उड़ान भरी। वायुयान-चालक का काम भी वे ही करते रहे। दो वर्षों बाद एक वायुयान के टकरा जाने से उनका ध्यान दूसरी ओर आकृष्ट हुआ।

प्रथम विश्व-युद्ध के समय उत्तरी आयरलैंड के कृषि-विभाग ने श्री फर्ग्यूसन को ट्रैक्टरों और दूसरे कृषि-विषयक औजारों की देखभाल का काम सौंपा। यह काम करते हुए उन्हें जो अनुभव हुआ, उससे वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि यदि किसानों को जमीन का उत्पादन बढ़ाना है तो उन्हें मशीन की और अधिक सहायता लेनी होगी।

सन् १९२० में उन्होंने वह प्रतिकृति तैयार की जो आगे चलकर फर्ग्यूसन ट्रैक्टर के नाम से विख्यात हुई। पहले तो ये ट्रैक्टर थोड़ी संख्या में ही तैयार होते थे किन्तु सन् १९३६ में फर्ग्यूसन ने Huddersfield के डेविस ब्राउन के साथ एक इकरारनामा कर लिया जिसके अनुसार नये मॉडल को

बनाने तथा उसके विक्रय की व्यवस्था हो गई। नया मॉडल फर्ग्यूसन ब्राउन ट्रैक्टर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस प्रकार के लगभग १००० ट्रैक्टर तैयार किये गये।

किन्तु फर्ग्यूसन का बडा इकरारनामा (Agreement) तो हेनरी फोर्ड के साथ हुआ जब वे सन् १९३९ में अमेरिका गये। यह निश्चय हुआ कि फर्ग्यूसन हेनरी फोर्ड के लिए ट्रैक्टर बनवाने का काम करेंगे।

फर्ग्यूसन तथा हेनरी फोर्ड दोनो की यान्त्रिक-प्रतिभा असाधारण थी। इसलिए साझे का यह व्यवसाय खूब फला-फूला। अक्तूबर १९४२ तक लगभग एक लाख से अधिक ट्रैक्टरो का व्यवसाय किया गया। किन्तु सन् १९४७ में जब हनरी फोर्ड की मृत्यु हो गई तो उनके पौत्र हनरी फोर्ड द्वितीय ने पहले का इकरारनामा रद्द कर दिया क्योकि उनकी धारणा थी कि वे स्वय अपने ट्रैक्टर सस्ते बना सकेंगे। फर्ग्यूसन ने इकरारनामा भग होने के कारण मुकद्दमा दायर कर दिया। मुकद्दमे का उद्देश्य यह नही था कि फर्ग्यूसन इसके कारण रुपया पैदा कर सकेंगे, यह वास्तव में सिद्धान्तो की लडाई थी। मुकद्दमा ५ वर्ष तक चलता रहा। इस मुकद्दमे का फैसला होने पर फर्ग्यूसन को जो रकम मिली, वह फर्ग्यूसन अमरीकी कम्पनी को गई।

फर्ग्यूसन की आर्थिक नीति यह रही है कि कृषि-सम्बन्धी उत्पादनो की कीमत कम की जाय, इसी से आर्थिक स्थिति उन्नत हो सकती है। उनका कहना है कि दुनिया के अधिक-

सित देशों में कृषि-सम्बन्धी यन्त्रों का अधिकाधिक उपयोग करना चाहिए जिसका अवश्यम्भावी परिणाम होगा अधिक उत्पादन, अधिक समृद्धि और अधिक सुख।

सन् १९४९ में अवमूल्यन के ठीक बाद फर्ग्यूसन ने प्रेस का सहारा लेकर इस तथ्य का प्रचार करना प्रारम्भ किया कि खेती में आधुनिक यन्त्रो के प्रयोग द्वारा उत्पादन की कीमत में २० प्रतिशत कमी की जा सकती है। इसके लिए यह भी आवश्यक है कि कठिन परिश्रम किया जाय तथा कुशल व्यक्तियो के हाथो प्रबन्ध का काम सौंपा जाय।

फर्ग्यूसन सार्वजनिक दृष्टि से कोई महत्वपूर्ण व्यक्ति नही है। वे कद में छोटे है तथा ऐनक लगाये रहते है। शराब वे नही पीते, चुरट (Cigar) भी कम पीते है। उन्हे एक दृष्टि से अर्ध-शाकाहारी कहना चाहिए। वे प्रत्येक ब्यौरे पर बड़ा ध्यान देते है और अपने कर्मचारियो से बड़ी आशा रखते है। कर्मचारी भी फर्ग्यूसन की ईमानदारी के कायल है, उन्हे भी विश्वास है कि ट्रैक्टरो से जो लाभ होगा, वह फिर इसी व्यवसाय में लगा दिया जाय। सार्वजनिक जीवन में फर्ग्यूसन ने कोई भाग नही लिया।

फोर्ड के आविष्कार ने अमेरिका की जीवन पद्धति मे परिवर्तन उपस्थित किया, न्यूफील्ड ने सार्वजनिक हित के कामो में पैसा लगा कर ब्रिटिश जन-हितैषियो में बड़ा नाम पाया। इसी प्रकार फर्ग्यूसन ने भी ट्रैक्टरो द्वारा कृषि-पद्धति में क्रान्ति उपस्थित की।

फर्ग्यूसन यन्त्र और नैतिकता में अभिन्न सम्बन्ध मान कर चलते हैं। वे सामाजिक ऐंजिनियरिंग के हिमायती हैं।

किस प्रकार एक सामान्य कृषक अपने अध्यवसाय, परिश्रम और यान्त्रिक प्रतिभा द्वारा लोगों के जीवन को सुखी बना सकता है, इसका पता हमें श्री फर्ग्यूसन के जीवन से लगता है। जिस धार्मिक भावना को लेकर धर्म-प्रचारक अपना काम करते है, उसी भावना के साथ फर्ग्यूसन ने ट्रैक्टरों द्वारा कृषि-सम्बन्धी उन्नति को अपने जीवन का प्रधान लक्ष्य बनाया। जिस व्यक्ति में अपने काम के प्रति लगन होती है, उसे अवश्य सफलता मिलती है। ऐसा व्यक्ति उस काम में रस लेने लगता है। यही फर्ग्यूसन की सफलता का रहस्य है।

प्लास्टिक के प्रथम भारतीय कारखानेदार श्री बनारसे

स्वर्ण-युग तो कब का खत्म हो गया। लोह युग भी गया, ताम्रयुग का भी अंत हो गया तथा पीतल या स्टेनलेस स्टील का युग भी बीत गया और अब प्लास्टिक के युग का प्रारम्भ हुआ है। प्लास्टिक का युग ? हाँ, आज हम प्लास्टिक के युग में रह रहे है।

विश्वामित्र ने ब्रह्मा की प्रतिस्पर्द्धा में प्रतिसृष्टि का निर्माण किया था। इसी प्रकार अन्य किसी भी प्रकार की धातु की जोड की ही नही, पर उससे कुछ अधिक ही आकर्षक ऐसी प्लास्टिक की प्रतिसृष्टि का निर्माण होने लगा है। प्लास्टिक ने तो कभी का मानव जीवन मे प्रवेश कर लिया है। सम्पूर्ण मानवी व्यवहारो पर आच्छादित हुए इस प्लास्टिक ने प्रत्यक्ष रूप से मानव शरीर में भी प्रवेश कर लिया है। यह किस प्रकार हुआ, यह जानने के लिए मैंने अमरावती के श्री पांडुरंग सीताराम बनारसे से प्रत्यक्ष भेंट करने अथवा इण्टरव्यू लेने का निश्चय किया।

पहले श्री बनारसे से मिल कर मुझे बडा आश्चर्य हुआ। उनके नाम तथा कीर्ति के बारे में मैं अपने अमरावती के

मित्रों से पहले ही सुन चुका था। १७–१८ वर्ष इंग्लैंड में रह कर तथा नाम, कीर्ति एवं धन प्राप्त करके मनुष्य स्वदेश आकर किस ठाठ बाट से रहता है, यह मैं पहले देख चुका था। इससे उनकी एक मनोरम मूर्ति मैंने कल्पित कर रखी थी। किन्तु प्रत्यक्ष रूप से देखने पर श्री बनारसे सचमुच एक अकल्पित व्यक्ति निकले, यह मुझे स्वीकार करना चाहिए। उनका सादा वेश, सादा रहन-सहन, सीधी सरल भाषा देख कर कोई भी उनके प्रति आदर से झुक जायगा। किन्तु इस सादे व्यक्तित्व के पीछे कितनी कर्तृत्व-शक्ति छिपी है, अनुभव, तपस्या और कितनी लगन है, यह जानने में कुछ भी समय नहीं लगा। उनकी साहसी वृत्ति, समाज-सेवा की धुन तथा उनका प्रखर स्वदेश-प्रेम उनके प्रत्येक शब्द से प्रकट हो रहा था।

"सम्पूर्ण मानवीय व्यवहारों को आच्छादित करने वाले प्लास्टिक ने प्रत्यक्ष रूप से मानव शरीर में भी प्रवेश किया है," इस कथन के ज्वलन्त उदाहरण है श्री बनारसे। यह मैं इसलिए नहीं कह रहा हूँ कि प्लास्टिक के कारखाने के वे मालिक है, किन्तु सचमुच प्लास्टिक ने उनके शरीर में प्रवेश कर लिया है। हुआ ऐसा—

समुद्र में तैरते समय अपघात होने से दवाखाने में पड़े एक पंजाबी मित्र को रोज दोपहर का भोजन पहुँचाने की जिम्मेदारी श्री बनारसेजी ने अपने ऊपर ली। एक दिन मोटर से भोजन का डिब्बा लेजाते समय रास्ते में उनकी मोटर से

एक बड़ा भयंकर अपघात हुआ और मस्तक तथा खोपडी को चोट लगने से बनारसेजी दो दिन बेहोश रहे। भौंहो के ऊपर की बाजू का चमडा फट कर लगभग अलग ही हो गया था। दवाखाने के डाक्टरो ने शस्त्र क्रिया कर मस्तक का फटा हुआ चमडा नायलान (एक प्रकार के प्लास्टिक) के धागे से सी दिया। नायलान का यह गुण है कि कुछ समय बाद वह अपने आप ही शरीर में मिल कर रक्त-मांस में मिल जाता है अन्य धागो के समान इसके टाँके तोडने नही पडते। इस अपघात से उनका एक प्रकार से पुनर्जन्म हुआ।

उन्होने हँसते हुए मुझे कहा—"ऐसी घटना घटी भाई साहब! मेरे रक्त मे ही प्लास्टिक मिल चुका है, शायद इसीलिए प्लास्टिक का व्यवसाय मुझे इतना प्रिय है।"

बनारसेजी से प्लास्टिक के अनेक प्रकारो की जानकारी प्राप्त करते समय मैंने सहज ही पूछा—"प्लास्टिक के खिलौने आदि बाजारी चीजें तो हम रोज ही देखते है, इसके सिवाय प्लास्टिक से और क्या-क्या बनता है ?"

"प्लास्टिक से क्या बनता है यह पूछने के बजाय यह पूछना ठीक होगा कि प्लास्टिक से क्या नही बनता ?" बनारसेजी ने प्रश्न का उत्तर प्रश्न में ही दिया। कुछ समय बाद उन्होने कहा—"प्लास्टिक से सब कुछ बनता है। रास्तो पर लगी दूकानो में पाई जाने वाली असंख्य वस्तुओ के सिवाय प्लास्टिक के दांत, आँखें तथा शरीर के अवयव तक बनते है। कपडा, कागज, घर तथा घर की प्रत्येक वस्तु, यहाँ तक कि

प्लास्टिक के बर्तन भी बन सकते हैं। स्कूल कचहरी, दवाखाना आदि में लगने वाले सब सामान प्लास्टिक से बनाये जा सकते हैं। वायुयान, मोटर, टाइप राइटर, रेडियो तथा अन्य आधुनिक यंत्रों के पुर्जे, अखडित काच, खपरे, सौंदर्य-प्रसाधन के बहुरंगी मोहक तथा सुडौल आकार के डिब्बे, शीशियाँ, शीशियों के कार्क, धूप-चश्मे, बॅंद, घडी के पट्टे, कमरपट्टे, सीने की सुइयाँ, चूडियाँ आदि सब कुछ प्लास्टिक से बनते हैं। १८५६ में प्लास्टिक की खोज करने वाले जान हाइट या अलेक्जेंडर पार्क्स को भी उसकी कल्पना न हुई होगी जितना विस्तार आज प्लास्टिक की प्रति-सृष्टि का हुआ है।

उनके द्वारा दिखलाये प्लास्टिक का यह विश्वरूप देखकर मैं विस्मित हुआ। विदेश में जाकर प्लास्टिक का कारखाना खोलने वाले श्री बनारसेजी पहले भारतीय उद्योगपति हैं। लन्दन में "P. S. Banarse & Co. (Products) Ltd." नामक प्लास्टिक मोल्डिंग कारखाना तथा बडनेरा रोड-स्थित अमरावती का "P. S. Banarse Industries (India) Ltd." नामक भव्य कारखाना उनके यश के जीवित स्मारक हैं। बनारसे बन्धु के जीवन से सलग्न उनके नवीन उद्योग-धन्धे का इतिहास जितना मनोरंजक है, उतना ही उद्‌बोधक भी है।

श्री बनारसे अमरावती जिले में गनोजे (देवी के) रहने वाले हैं। वहीं १९१५ में उनका जन्म हुआ। छः वर्ष की उम्र में वे अपने भाई के साथ मूर्तिजापुर के पास कुरुम में

अपने मामा के पास रहने के लिए गये। वहाँ दो वर्ष रहकर मराठी दूसरी तक पढकर अपने भाईके साथ अमरावती आये। भाई हाईस्कूल में तथा आप मराठी स्कूल में पढने लगे। घर की निर्धनता, माता-पिता से सहायता न मिलने तथा भाई के सिवाय दूसरा आधार न होने के कारण मराठी चौथी पास कर श्री बनारसेजी ने स्कूल छोड दिया। दसवें वर्ष की पढाई खत्म हो गई। अब क्या किया जाय ?

भाई हिन्दू हाई स्कूल में पढता था। स्कूल के हैंडमास्टर का उस पर स्नेह था। बुद्धिमान होने से वह स्कूल में प्रसिद्ध था। अपने प्रिय विद्यार्थियो को सहायता देने के उद्देश्य से हैंडमास्टर साहब ने अपने पैसो से सामान आदि खरीदकर उसे फोटोग्राफी की शिक्षा दिलवाई। गुरु-शिष्य दोनो को चित्रकला से प्रेम होने के कारण फोटोग्राफी की शिक्षा से भाई को बहुत लाभ हुआ। भाई ने अमरावती मे बडनेरा रोड पर खापर्डे के बाडे के पीछे सुनार-चाल में एक छोटा स्टूडिओ खोला तथा बनारसेजी अपने भाई को स्टूडिओ के काम में मदद देने लगे। उम्र के ११ वें वर्ष में ही व्यवसाय आरम्भ हो गया। उसी समय प्लेग की बीमारी के कारण तीन आदमी मर गये। परिस्थिति और भी कठिन हो गई। किन्तु बनारसे-बन्धुओ की उद्यमशीलता के कारण स्टूडिओ अच्छी तरह चलने लगा। बहुत काम मिलने लगा। फोटोग्राफी, एन्लार्जमेंट्स तथा साथ ही साइनबोर्ड पेंटिंग का काम कर बनारसे-बन्धु अपनी अल्प आयु में ही स्वावलम्बी बन गये। दोनो भाइयो को एक दूसरे

से सहायता मिलती थी। कष्टो की तो सीमा ही नही थी। सिर पर केमरे की पेटी लिये दोनो भाई वर्ष भर बरार के ग्रामो में घूमते रहे।

व्यवसाय चालू होने पर भी शिक्षा की उत्कण्ठा बनी ही रही। बिना उच्च शिक्षा प्राप्त किये गुणो का मूल्य न होगा, यह सोचकर दोनो भाइयों न पजाब विश्वविद्यालय को मट्रिक परीक्षा की तैयारी की तथा उसके लिए दोनो भाई अमरावती छोडकर लाहौर गये। उसी समय दोनो भाइयो का विवाह हो जाने से उन्हे यह यात्रा सकुटुम्ब करनी पडी। जाते समय वे अपना स्टूडिओ भी साथ लेते गये और अमरावती का स्टूडिओ लाहौर में शुरू हुआ। शिक्षण तथा व्यवसाय दोनो चलने लगे। दिन को व्यवसाय तथा रात को पढाई। विशेषता यह है कि व्यवसाय में पत्नी भी उत्साह से सहायता करने लगी। किसी भी प्रकार क शिक्षा-व्यवसाय में कार्य-कारी साझेदारी (Working Partnership) रखना सचमुच नई बात थी। बनारसे बन्धुओ ने बरार के समान ही पजाब में भी दो वर्ष तक गावों में केमरे के साथ घूमकर फोटोग्राफी का धन्धा किया। अनुभव से स्कूल में शिक्षित होकर पत्नियाँ भी अपने धन्धे में प्रवीण होकर फोटो डेवलपिंग, एन्लार्जमेण्ट्स आदि काम करने लगी। उस समय महिलाओ का दूसरे प्रान्तो में जाकर ऐसे कार्य करना नई बात थी। किन्तु परिस्थितियो के कारण उन्होने यह सब कुछ किया। रातो रात पचास-पचास एन्लार्जमेण्ट्स कर उन्होने

ग्राहको को छका दिया। यह सत्य है कि बनारसेजी मैट्रिक करने के लिए लाहोर गये थे, किन्तु भाग्य मे शिक्षा का 'योग' नही था, यह भी सत्य है। वे व्यवसाय की गडबड में मैट्रिक की परीक्षा म नही बैठ सके। लाहौर में व्यवसाय की जड अच्छी तरह जम गई थी तीन स्टूडिओ चालू थे। बनारसेजी का सारा समय धघे में ही व्यतीत होने लगा। फुरसत के समय में पढाई करने के लिए समय ही न मिलता था। अन्त में मैट्रिक में बैठने का विचार छोडना पडा। किन्तु भाई यद्यपि मैट्रिक में नही बैठा, फिर भी दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालेज मे भरती होकर बी० एस० सी० हो गया।

बी० एस० सी० पास हो जाने पर भाई की आशा महत्वाकाक्षाएँ बढने लगी। वह केवल फोटोग्राफी से ही सन्तुष्ट न होकर विदेश मे जाकर सिने-फोटोग्राफी की शिक्षा लेने तथा सिनेमा में केमरामेन के रूप में काम करने या अपना ही सिने स्टूडिओ खोलने की कल्पना करने लगा। कल्पना सूझने की देर थी, शीघ्र ही उसने इग्लैंड जाने की तैयारी शुरू की तथा उसने भारत का किनारा छोड दिया।

लदन में पैर रखते ही उसने अपना व्यवसाय आरम्भ किया। उसी समय इंग्लैंड के सम्राटपचम जार्ज तथा साम्राज्ञी मेरी के जुबली महोत्सव के लिए भारत सरकार की ओर से उन्हे सम्राट सम्राज्ञी के पूर्ण आकार के ३५० रगीन फोटो एन्लार्जमेंट का काम मिला। इससे लन्दन मे व्यवसाय चालू करने मे बहुत सहायता मिली।

लन्दन में भाई को अच्छी स्थिति में लगा देखकर बनारसे जी की भी इच्छा वहाँ जाने की हुई तथा १६३६ के लगभग लाहोर का स्टूडिओ छोडकर वे अपनी पत्नी के साथ इग्लैण्ड को रवाना हुए। लदन मे वे अपने भाई के घर रेनिंगटन रोड पर ठहरे। लन्दन जैसे शहर मे दोनो भाइयो ने अपना घर बसाया तथा ससार की राजधानी के उस विशाल जीवन प्रवाह में अपनी छोटी सी नाव ईश्वर का नाम लेकर छोड दी। कहाँ अमरावती, कहाँ लाहोर और कहाँ लन्दन।

उस समय लन्दन में फोटोग्राफी के व्यवसाय में बडी प्रतियोगिता चल रही थी। ६ पेनी में ३ उत्कृष्ट फोटो कार्ड्स मिलते थे। व्यवसाय की इस मदी तथा प्रतियोगिता को देख-कर दोनो भाई ठण्डे पड गये। यहाँ वे किस प्रकार टिक सकेंगे, यही वे सोचने लगे। यह सत्य है कि उनकी सिने-फोटोग्राफी की शिक्षा की इच्छा थी, किन्तु वह शिक्षा इतनी महँगी थी कि उस कल्पना को उन्हें मस्तिष्क से निकाल ही देना पडा। फिर क्या किया जाय ? दोनो भाई सकुटुम्ब विदेश में आकर सकट में फँस गये। क्या किया जाय समझ में न आता। चुप बैठना तो सम्भव ही नही था। भूख रहने का अवसर आ सकता था। पास की पूँजी कितने दिन लदन जैसे स्थान में सहायता दे सकती थी ?

अत में अपने प्रिय व्यवसाय से राम राम कर कोई उपाय न देख दोनो भाई पेट भरने के अन्य किसी साधन की खोज में निकले। जो काम मिलेगा उसे करने की इच्छा थी ही और

यही उनकी वास्तविक पूंजी थी। होटलों में काम मिलने की आशा से छानबीन करने पर 'न्यू इण्डिया रेस्टरां' में काम मिला तथा शीघ्र ही वहाँ की हिस्सेदारी भी मिल गई। साथ ही साथ ग्रोसरी, किराना आदि थोक व्यापार करने में भी उन्होंने ढिलाई नहीं की। साथ ही सह-व्यवसाय के रूप में सौन्दर्य-प्रसाधन (कास्मेटिक्स) घर में तैयार कर बेचने का काम भी शुरू किया। आगे चलकर युद्ध-काल में युद्ध-सामग्री के उत्पादन पर ही जोर होने से सौन्दर्य-प्रसाधन का उत्पादन सीमित कर दिया गया था। इससे युद्ध-काल में सौन्दर्य-प्रसाधन के बाजार में बहुत तेजी आई तथा बनारसे-बन्धुओं को इस व्यवसाय में बहुतसा पैसा मिलने लगा। दोनों भाइयों के बढ़ते परिवार तथा बढ़ती आय के कारण लंदन में बनारसे परिवार के दो घर हो गये। बड़ा भाई हेमस्टेड में तथा छोटा भाई गोल्डर्स ग्रीन रोड पर रहने लगा।

अलग कुटुम्ब हो जाने पर बनारसेजी तथा उनकी पत्नी जनाबाई ने नई आशाओं और उत्साहों के साथ व्यवसाय आरंभ किया। कष्टों की आदत तथा काम के उत्साह के कारण पति-पत्नी ने अथक परिश्रम कर व्यवसाय फिर से जमाया। दिन के सोलह घण्टे तथा सप्ताह के सात दिन कारखाने का काम चलता था। कारखाना घर में ही था। कारखाना क्या, गृह-उद्योग ही था। स्वयं माल बनाना तथा स्वयं ही बाजार में जाकर दूकानों दूकानों उसे खपाना। रविवार को अन्य बाजार बन्द होने पर छोटे व्यापारियों का 'पेटीकोट मार्केट' चालू

रहता है। वहाँ जाकर माल बेचना। युद्ध-काल में तो लाभ था किन्तु सौन्दर्य-प्रसाधन के व्यवसाय के भविष्य के विषय में बनारसेजी हमेशा शंकित रहते थे। इससे वे अस्वस्थ-से रहने लगे। युद्ध खत्म हो जाने पर इस व्यवसाय में कुछ भी आनन्द नहीं रहेगा, अत दूसरा लाभप्रद व्यवसाय अभी से हाथ में रहे, इस दृष्टि से बनारसेजी विचार करने लगे। उनकी तीक्ष्ण बुद्धि से शीघ्र ही उन्हे यह ज्ञात हुआ कि प्लास्टिक के जिन सुन्दर, सुडौल, रंगीन तथा आकर्षक पैकिंग में हम अपने सौन्दर्य-प्रसाधन भरकर बाजार में बिक्री के लिये भेजते है, उस पैकिंग की सामग्री भी (भिन्न भिन्न प्रकार के मनमोहक डिब्बे, बोतलें, आदि) यदि हम तैयार करें तो यह व्यवसाय आगे चलकर भी चल सकता है। सौन्दर्य प्रसाधन की मुख्य ग्राहक होती हैं स्त्रियां। स्त्रियो की सौन्दर्योपासक दृष्टि में सुन्दर वस्तु ही जँच सकती है। उनके सौन्दर्य की इच्छा का मूल्य नही रहता। नयनाभिराम प्लास्टिक के भिन्न-भिन्न रगो के सौन्दर्य प्रसाधन के डिब्बों की प्रदर्शनी दूकान में देखी कि उस पर मन लुभाया! और स्त्रियो ने वह माल उठाया ही समझिये। स्त्रियो के इस स्वभाव का अध्ययन करके ही उन्होने प्लास्टिक के डिब्बे, बोतलें आदि बनाने के लिए अपना कारखाना खोलने का निश्चय किया। उस समय वह केवल स्वप्न लगता था, किन्तु कल्पना, कुशलता, सतत परिश्रम तथा उद्योग के बल पर उन्होने इस स्वप्न को साकार कर दिया। अडचनें अनेको थी, किन्तु उन्हे पार करने की इच्छा-शक्ति और भी बलवान थी।

युद्ध काल में प्लास्टिक-कटेनर्स का कारखाना खोलना एक कठिन कार्य ही था, किन्तु वहां के एक इ जीनियर की सहायता से उन्होंने यन्त्र-सामग्री, औजार, सांचे (मोल्ड्स) आदि इधर उधर से एकत्र कर १९४१-४२ के लगभग अपना लास्टिक का कारखाना घरेलू पद्धति से छोटे पैमाने पर शुरू किया। पहले जहाँ २-३ यन्त्र थे, आज वहाँ मोल्डिंग के बडे-बड़े दस यन्त्र खडे है। ३४ मोजेर्ट स्ट्रीट, क्वीन्स पार्क, किलबर्न में वर्कशाप के साथ कारखाना बड़े पैमाने पर चालू है तथा आज वे ब्रिटेन के अनेको प्रसिद्ध कास्मेटिक कारखानो को कास्मेटिक-कन्टेनर्स दे रहे है। सौन्दर्य प्रसाधन के उत्पादन की अपेक्षा सौन्दर्य-प्रसाधन रखने के डिब्बो का उत्पादन अधिक लाभप्रद ज्ञात होने पर उन्होंने सौन्दर्य-प्रसाधन बनाने का काम १९४४ में बन्द कर दिया तथा अपना सम्पूर्ण ध्यान नये कारखाने की ओर केन्द्रित किया। १९४६ में बनारसीजी अपने प्लास्टिक कटेनर्स का कारखाना प्राइवेट लिमिटेड कम्पनी का स्वामित्व करके स्वय तथा श्रीमती जनाबाई उसके डाइरेक्टर्स हुए—कारखाने का नामकरण-समारोह उस समय लन्दन के भारतीय हाई कमिश्नर श्री व्ही० कृष्णमेनन के हाथों हुआ तथा 'जय हिन्द प्लास्टिक वर्क्स' नाम रखा गया।

यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि कारखाना क्वीन्स पार्क, किलबर्न मोजर्ट स्ट्रीट पर है। यह क्षेत्र उद्योग-धन्धों के लिए न होकर लोगो के रहने के लिए है। इस आधार पर टाउन एण्ड कंट्री प्लैंनिग एक्ट का आधार लेकर लदन काउण्टी

कौंसिल के अधिकारियों ने बनारसेजी के कारखाने पर आपत्ति उठाई तथा अपना कारखाना वहाँ से हटाने के लिए लगातार तगादे किये। किन्तु वे भी लडने को तैयार थे।

उन्होंने तीन वर्ष तक लडकर अन्त में भारतीय हाई कमिश्नर की सहायता से केस जीत लिया तथा और भी सात वर्षों का पट्टा (लीज) प्राप्त कर लिया। इस कार्य में उन्हें बहुत कष्ट हुए, किन्तु यह आनन्द की बात है कि इतनी तपस्या का मीठा फल उन्हें मिला और यह नाटक सुखान्त हुआ।

लन्दन में बसे हुए भारतीयों में श्रीबनारसेजी को सौजन्य, सेवा भाव तथा सचाई के कारण प्रतिष्ठापूर्ण स्थान प्राप्त है। वे स्वयं इण्डिया लीग के सदस्य है तथा उनसे लन्दन के भारतीयों को हमेशा सहायता मिलती रहती है। प० नेहरू से लेकर सामान्य विद्यार्थी तक सब ने लन्दन ठहरते समय बनारसेजी का आतिथ्य ग्रहण कर उनकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। लिंपियाड के लिये गई अमरावती हनुमान व्यायामशाला की टोली प्रवास की अडचन के कारण लन्दन में अटक गई थी। उस समय बनारसेजी ने स्वेच्छा से इस टोली की व्यवस्था की तथा उसे जो सहायता दी, वह स्मरणीय रहेगी। इस प्रकार बनारसेजी लंदन के भारतीयों के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन में घुल-मिल गये।

१९४७ में अपनी मातृभूमि को स्वतन्त्र देख बनारसेजी अत्यन्त प्रसन्न हुए। देश स्वतन्त्र हो गया है, अतः वहाँ जाकर

कोई नया व्यवसाय प्रारम्भ करना चाहिए, यह सोचकर १९४९ में लगभग १४ वर्ष बाद वे अपनी मातृभूमि को सपरिवार लौटे। बम्बई में उतरते ही राज्यपाल सर महाराजसिंह ने उन्हें मिलने के लिए बुलाया तथा बम्बई में ही प्लास्टिक फैक्टरी खोलने के लिए कहा। बाद में नागपुर आने पर खापरखेडा थर्मल स्टेशन के डायरेक्टर श्री मेकी ने खापरखेडा में कारखाना खोलना सुविधाजनक बतलाया। इसके विपरीत उस समय के गृह-मन्त्री प० द्वारकाप्रसाद मिश्र ने जबलपुर में कारखाना खोलने की सलाह दी।

'सुनना सबकी, करना मन की' इस लोकोक्ति के अनुसार बनारसेजी ने सब दृष्टिकोणों से सोच कर अन्त में अमरावती में, जन्मभूमि में ही इस नवीन उद्योग को स्थापित किया तथा बडनेरा रोड पर १७ एकड भूमि खरीदी। बाद में बनारसे-दम्पति इग्लैंड गये तथा वहाँ से उन्होंने पैसा भेज कर पहले कारखाने की इमारत खडी की। फिर १९५१ के दिसम्बर में अपने साथ मि० सेबसटन नामक प्रसिद्ध इजिनियर को अमरावती लाकर उनके हाथ से आधुनिक प्लास्टिक-मोल्डिंग मशीनरी का कारखाना खोला। इसके पहले ही उन्होंने अपने बहनोई श्री शिरभाते तथा इजिनियर श्री आघव को प्लास्टिक उद्योग धधे की शिक्षा के लिए इग्लैंड ले जाकर प्रशिक्षित कर वापिस भिजवा दिया था। उन्होंने लगभग ७५ हजार की कारखानों की इमारत बना कर उसमें मि० सिबस्टन नामक-मोल्डिंग-विशेषज्ञ की सहायता से ३॥ लाख

रुपयो के यन्त्र लगाये है। आज तक कुल ५॥ लाख पूँजी लग चुकी है।

इस प्रकार वे आज कल अपनी जन्मभूमि में इस नवीन उद्योग-धन्धे के कार्य में जुटे है। फिर भी लदन का कारखाना चालू है ही। उनकी सुसस्कृत पत्नी स्वत: किलबर्न का कारखाना अच्छी तरह चला रही है। अपने आदमियो के सम्बन्ध में बनारसेजी में इतना अपनत्व है कि उन्होने इग्लैंड में रहते समय भारत के प्राय अपने सभी रिश्तेदारो को सकुटुम्ब वहाँ बुला लिया और उन्हे योग्य कार्यों में लगा दिया। बनारसेजी के पिता का देहावसान इग्लैंड में ही हुआ।

बनारसेजी ज्वलत देशाभिमानी है। उनकी हार्दिक इच्छा है कि भारत के विद्यार्थी वहाँ जाकर वहाँ के उद्योग धन्धो की शिक्षा ग्रहण कर भारत की सेवा करें। स्वतत्र भारत के नव-नागरिको के निर्माण के विषय में उन्हे बडी चिन्ता रहती है। एक लम्बी अवधि तक इग्लैंड में रहने के कारण उनके मन पर अग्रेजी समाज-व्यवस्था, चरित्र तथा शिक्षण-पद्धति का गहरा प्रभाव पडा है। ब्रिटिश शिक्षण-पद्धति के आधार पर भारत की बाल-पीढी चरित्रवान, स्वदेशाभिमानी, अनुशासन प्रिय तथा उद्योगी हो सके, ऐसी शिक्षा देकर भावी भारतीय नागरिको को आज ही से तैयार करना चाहिए, ऐसा उनका ख्याल है। आज की तरुण पीढी का निम्न-स्तर का सयमहीन आकर्षण देखकर उन्हे बहुत बुरा लगता है। राष्ट्र की असली पूंजी है तरुण-पीढी। उसका पालन यदि अच्छी तरह नही

किया गया तो राष्ट्र की स्वतन्त्रता तथा उत्कर्ष को धक्का लगेगा। इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक और वांछनीय है कि आज की शिक्षण-पद्धति में आमूल परिवर्तन किया जाय ताकि इस देश के भावी नागरिक भारत को समृद्ध और उन्नत बनाने में अपना पूरा योग दे सकें।*

---

* अप्रैल सन् १९५२ के 'उदय' से संक्षिप्त करके साभार उद्धृत।

श्रीयुत के० सी० मॅरट

"आप चाहे कुछ भी कहे, ऐसा, वडे विज्ञापन देकर धंधा करने वाला कोई देशी मनुष्य हो ही नही सकता। इसके लिये विलायतीपन की आवश्यकता होती हैं। हमारे लोगो से ऐसा व्यापार नही चल सकता।"

"नही भाई, वह हमारा कोई भारतीय ही हैं। उसने केवल नाम अंग्रेजी रख छोडा हैं। Marrot इस स्पेलिङ्ग से दूसरे लोग फँस जाते है, बस और कोई बात नही। क्या तलवलकर अपना नाम T. Walker नही लिखता? हमारा जनू जोशी जे हरी एण्ड सस कहलाता है, क्या आपको पता नही? जनार्दन हरि लिखने के स्थान में जे० हरी लिखने से क्या बिगडता है? हाँ! थोडे में ही धधा चल जाता हैं। फिर इस नाम को क्यो छोडें?"

"कुछ भी हो, मॅरट देशी व्यापारी नही लगता। आप चाहें उसे भारतीय छोड कुछ भी कहें। उसके विज्ञापन कितने शानदार है। दूकान कितना भारी हैं। कुछ आपको पता हैं?"

दो मित्र आपस में ऊपर की वातें करते एक कमरे में बैठे थे। उनका एक तीसरा मित्र भी पास बैठा इस चर्चा को सुन रहा था। दोनो मित्रो ने इस विषय में उस तीसरे से मत और निर्णय पूछा। इसके लिए भी निश्चयपूर्वक कोई बात

कहना कठिन था। कारण यह कि वह जानता था कि देशी मनुष्य अंग्रेजी नाम रखकर धन्धा चलाते हैं, परन्तु उसे "मॅरट" नाम देशी नही लगता था ? इसलिए उसने स्वयं जाकर देखने का मार्ग निकाल लिया। कुछ अधिक विचार में न पड़कर वे तीनों फोर्ट में मॅरट की दूकान पर गए।

दूकान पर एक मेम सेल्सवुमन का काम करती थी। और भी दो-तीन दूकान के आदमी वहाँ दिखाई दिए। इससे पता तो नही चल सका कि उनमें से दूकान का मालिक कौन है। उसे पहचाना कैसे जाय, वे यह सोचने लगे। यदि मालिक हमारे सामने आ भी जाय तो उससे बात कैसे करें ? यह प्रश्न उनके मन को व्याकुल करने लगा। अन्त में उन दो मित्रो ने मालिक से बातकरने का काम तीसरे पर डाल दिया। इस पर वह सिर को थोड़ा खुजलाता हुआ वहाँ खड़ा था इतने में वह मेम आगे आई।

"आपको क्या चाहिए, रेन कोट ? साइज ? रंग ? मूल्य ?" उसने प्रश्नो की झड़ी लगा दी।

"मुझे मालिक से मिलना है।"

'किस लिए ?"

"कोई काम है।"

"काहे का ? विज्ञापन का"

उसने उनको सुझा दिया, यह अच्छा ही हुआ। इतने में एक ऊँचा, लम्बा मनुष्य उनकी ओर बढ़ा। उसका मुंह बहुत

बड़ा था। नाक भी बड़ी थी। केवल आँखें बारीक थीं। नाक की वक्रता तथा लंबाई से चालाकी और विस्तृत जानकारी टपकती थी। आँखें छोटी और बारीक होते हुए भी उनसे चतुराई तथा नीति निपुणता प्रकट हो रही थी। ये सब बातें मिलकर उनके चेहरे से विश्वास की भावना उत्पन्न करती थीं। परन्तु उनके मुख पर से एक प्रकार का रौब, मन की दृढ़ता और स्पष्ट वक्ता होने का अभिमान व्यक्त होता था।

"आपको क्या चाहिए ?" उन्होंने ऐसे स्वर में पूछा जिससे स्पष्ट पता लगता था कि उस दूकानमें उनसे ऊपर और कोई अधिकारी नहीं। उस दूकान के वही सर्वाधिकारी दिखाई दिए।

"हम श्री के० सी० मॅरट से मिलना चाहते हैं।"

"मैं हूँ, मैं ही के० सी० मॅरट हूँ। आपको मुझसे क्या काम है ?" ऐसा स्पष्ट उत्तर मिला। वे एकदम चकित रह गए। परन्तु मॅरट महाशय के स्वर में और बातचीत के ढंग में कुछ ऐसा निस्संकोच भाव था कि उनसे भय बिलकुल नहीं होता था। बिना लाग-लपेट की बातें किए, यह बताने में कि हम यहाँ किस लिए आये हैं उन्हें किसी प्रकार का डर नहीं हुआ। दोनों मित्रों में जो विवाद चल रहा था वह तीसरे ने मॅरट से कह दिया—

"मॅरट भाई भारतीय सज्जन हैं या यूरोपियन, यह देखने के लिए हम आये हैं।"

वे तीनों मन में सोच रहे थे कि स्वयं मालिक क्या करता है, क्रोध करता है या खीझकर हमें बाहर निकाल देता है।

ने में वे सज्जन एक कमरे में चले गये और उनको भी भी बुला लिया। उनके वहाँ जाने पर मॅरट महाशय ने अपनी सारी हकीकत कह सुनाई। बीच बीच में तीनो मित्र भी प्रश्न पूछते जाते थे। इससे पता लगा कि उनका नाम खानचन्द मॅरट है, उनका जन्म लाहौर का और जाति क्षत्रिय, आयु पचास से ऊपर है। बवई में धन्धा आरम्भ किए पैंतीस-छत्तीस वर्ष हो गए है। इतने वर्ष में सारे भारत में सबसे बड़े व्यापारी के रूप में उनकी ख्याति फैल गई है। बरसाती (वाटरप्रूफ) ओवर-कोटो का उनके समान बडा व्यापार भारत में किसी दूसरे का नही। वर्ष में वे लाखो रुपये का व्यापार करते है आदि में उन्होने केवल आठ सहस्र रुपये से काम प्रारम्भ किया था।

आज उनका माल सारे भारत में सब कही खपता है। प्रत्येक बडे नगर में उनके एजेण्ट है।

इतना सुन कर उन तीनो मित्रो का कौतूहल और भी बढा। यह व्यापार उन्होने चलाया कैसे, व्यापार की शिक्षा उन्होने कहाँ से प्राप्त की, किसने उनको यह काम सिखाया, उनके धधे का गुरु क्या है ? इत्यादि अनेक प्रश्न उन मित्रो ने उनसे किए। पहले पूछा कि आप कितना पढ़े है ? इस पर मॅरट महाशय बोले—

"वैसे मेरी शिक्षा कुछ अधिक नही। मेरे पिता की कराची में दूकान थी। तब तक मैं वही पढता था। उनकी दूकान पर बैठ कर उनके व्यापार को देखा करता था।"

"आपके पिता का व्यापार काहे का था ?

"पुराने सैनिक-कपड़े नीलाम में लेकर बेचने का मेरे पिता का धंधा था। गरम कोटों की गाँठें की गाँठें, उनकी दूकान पर बिक्री के लिए आती थीं। उन कोटों की बिक्री तावड़तोड़ हो जाती थी। शीतकाल में उत्तर भारत में उन गरम कपड़ों की बहुत मांग रहती है।"

"परन्तु सैनिक व्यापार की ओर आपके पिता का ध्यान गया कैसे ?"

"मेरे दादा सेना में ठेकेदार थे। तब सेना में ऊनी कपड़े कैसे मिलते हैं और दरिद्र भारतीयों में उनका उपयोग कितना है इत्यादि सब बातें मेरे पिता को ज्ञात हो गईं। मैं भी यह सब देखा करता था।"

"फिर आप बम्बई कब आये ? आने का कारण ? क्या अभी तक भी कराची में दूकान है ?"

"बम्बई में आये मुझे पैंतीस-छत्तीस वर्ष हो गए हैं। पिताजी के देहान्त के बाद कराची में धंधा बन्द कर मैंने बंबई में दूकान खोल ली। तब (सन् १९०२ में) मैंने आयात-निर्यात पर अधिक जोर दिया।"

"आप कौन माल निर्यात करते थे और किस वस्तु का आयात ?"

"मैं किसी एक ही वस्तु का आयात-निर्यात नहीं करता था। जो वस्तु विदेश में खपती हो उसको बाहर भेजता था और

जिस माल की भारत में अधिक मांग हो उसे बाहर से मँगाता था। एक समय तो बीस जर्मन कम्पनियों की सोल एजेन्सियाँ मेरे पास थी।

"आपके पास क्या क्या माल होता था ?

'सब प्रकार का फैंसी माल हार्ड-वेयर, लोहे का सामान, बरसाती कोट आदि पुष्कल प्रकार का माल था।

'अब आप केवल बरसाती कोटों ओवर-कोटों पर ही क्यों जोर दे रहे हैं ? दूसरी एजन्सियों का क्या हुआ ?'

'क्या हुआ ! वे सब बद हो गई। लडाई का आरम्भ होते ही सब एजन्सियाँ बन्द हो गई और मुझे अपना सारा व्यापार बन्द कर देना पडा। परन्तु धधा तो कोई-न-कोई चाहिए। इसलिए मै पुन पुराने सैनिक कपडे बेचने लगा।"

"ऐसे पुराने कपडो को लेता कौन है और आपको ये मिलते कैसे है ?"

'भारत में सब लोग आप जैसे कालेज स्टूडेण्ट या बडे बाप के बेटे नही। लाखो लोगो को फटे पुराने कपडो पर जीवन बिताना पडता है। हम जो कपडे बेचते है वे कोई पुराने या दूसरे के पहने हुए नही होते।"

'तो फिर वे कैसे होते है और वे सस्ते कैसे मिलते है।"

सेना के लिए हजारो-लाखो कपडे तैयार होते है। किसी न किसी कारण से उनको रद्दी कर दिया जाता है। कपडो को बदलने के लिए भी पहले रक्खे हुए कपडो को रद्दी करके

सस्ते दामो पर बेचने दिया जाता है। इसके सिवा सिपाही लोग नए कपडे मिलते ही पुरानो को बेचने की इच्छा करते हैं। ऐसे बहुतेरे प्रकार के कपडे बाजार में आते है।"

"अच्छा ! यह बरसाती ओवर-कोट का व्यापार कब से आरम्भ हुआ ?"

लडाई बंद होने के बाद सन् १९१९ में मैंने इस धंधे को पुन जोर से आरम्भ किया। जर्मन कम्पनियों से बरसाती कोट मंगाने लगा, इग्लेण्ड से भी कपडे मँगाता था। पर जर्मनी माल सस्ता पडता था।"

"आश्चर्य इस बात का है कि यहाँ ऐसे बरसाती कपडो की दूकानें बहुत सी है। फिर आपकी समृद्धि इतने झपाटे से कैसे बढ गई ? आपके धंधे का गुर क्या है ?"

"मै अपने व्यापार में दो महत्वपूर्ण बातो का पालन करता हूँ। मेरी पहली बात यह है कि ग्राहको से लिए हुए रुपये के बदले में उनको पूरा-पूरा और बराबर माल मिलना चाहिए। (All value for money recieved) यह मेरी आद्य बात है। धंधे का दूसरा तत्व है विज्ञापन। उसपर ध्यान न देने से काम नही चलता।"

"आपका भाव क्या यही है कि इतने से ही धंधा अच्छा चल जाता है ? आपको किसी प्रकार के और भी अनुभव हैं?"

"हां है, समय-पालन पर मेरा विशेष ध्यान रहता है। मै यत्न करता हूँ कि ठीक समय पर व्यवस्थित काम हो हीं

जाना चाहिए। मैं स्वतः सब काम करता हूँ। पहले धन्धा पीछे चैन, ऐसा ही मेरा नियम है।"

"इतना बड़ा धन्धा होते हुए भी आप स्वतः काम करते हैं, किसी को सहायक रूप में नहीं रखते ?"

"मुझे सहायक की क्या आवश्यकता है ? दूकान के काम के लिए ही ये नौकर हैं। शेष ऊपर का सारा काम मैं स्वयं करता हूँ। आज ही देखिए मुझे सवेरे साढ़े छै बजे घर से निकलना पड़ा। पत्नी कहने लगी, "आप नाश्ता-निहारी नहीं करेंगे ?" मैंने कहा—"नाश्ता आदि रहने दो, पहले मैं काम कर आऊँ। आज की परिस्थिति में यह काम करने वाला दूसरा नहीं। मैं आप काम से जी चुराऊँ तो धंधा कैसे चल सकता है।"

"भाई आप कमाल के मनुष्य हैं। आप जैसे मनुष्य को सहायक का प्रयोजन नहीं, यह आश्चर्य है। दूकान के लिए ऐसे मनुष्य आपको कैसे मिले हैं ? बहुतेरे व्यापारियों को सदा शिकायत रहती है कि उन्हें अच्छे काम करने वाले नौकर नहीं मिलते। आपका क्या अनुभव है ?

"मेरा अनुभव? मुझे बुरा मनुष्य ही नहीं मिला। अभी आपको चाय देने वाले मेरे खलोल को ही देखिए, भला वह कितने दिन से मेरे पास होगा ?"

उन मित्रों से उत्तर की प्रतीक्षा न करके वे आप ही बोले—"तेरह-चोदह वर्ष से हैं। आरंभ में तो वह डयोढ़ी पर बैठने वाला चोकीदार रक्खा गया था। अब वह सबसे

बड़ा सेल्समर्मैन हूँ । आपने देख ही लिया कि मेरे लिए प्रतिदिन चाय बना देने को तैयार रहता है । अब यह प्यालियाँ लेजाकर और धोकर भी रख देगा ।"

खलील का ऐसा वर्णन सुन वे सब मित्र एक दूसरे की ओर देखने लगे । उनमें से एक मित्र ने कहा कि इतनी बडी दूकान का मुखिया सेल्समैन होकर चाय की प्यालियाँ धोने का काम भी प्रतिदिन करता है, यह कोई विशेष गुण है । और मॅरट से पूछा कि यह खलील कौन और कहाँ का है ?

पूछ-ताछ करने पर पता लगा कि यह खलील एक ईरानी पठान है, बहुत अच्छा है, ऐसा कहकर उन्होने मॅरट से कहा–

"क्या आपने अपने किसी स्वजन-बान्धव को धन्धे में नही लिया ?"

बहुत से लोग यही भूल करते है । मैंने एक पक्का निश्चय कर रखा है कि अपने सगे-सम्बन्धी या मित्र को कभी धन्धे में नही लेना चाहिए। यह बात नहीं कि उनको सहायता नही करनी चाहिए । उनको रुपया-पैसा देना चाहिए, पर कभी अपनी दूकान मे नही रखना चाहिए । उनको अपने धंधे में रखने जैसा दूसरा कोई पागलपन नही ।"

"यह तो आप एक बडी विचित्र बात कह रहे है । मानलीजिए, हमने अपने किसी बन्धु-बान्धव को दूकान में रख लिया, तो इससे बिगड़ता ही क्या है ?"

"आपको अभी कुछ पता नही । व्यापार में काम करने वालो को मालिक की आज्ञा में रहना चाहिए । उनको उसका

डर रहना चाहिए। यह बात अपने सगे-सम्बन्धियों में होना सम्भव नही। उनको मालिकपन का अभिमान हो जाता है। उनके हाथ से ठीक काम नही हो पाता। इसलिए मैंने किसी भी स्वजन-बान्धव को दूकान में नही रखा।"

"क्या आपको ऐसा नही लगता कितने दिन इतना बड़ा परिश्रम करने के बाद थोड़ा विश्राम करना चाहिए।"

"आप लोग यही भूल करते है। सारा धधा ठीक चलने लगा कि आप सेठ बनकर बैठ जाते है। आप पर आलस्य छा जाता है। आप परावलम्बी बन जाते है। फिर दूकान की समृद्धि बढे तो बढे कैसे ? मेरा तो ऐसा मत है कि आप किए बिना तो काम चलता ही नही। मैं स्वयं कोटों की गाँठें उठाता हूँ। ग्राहक आने पर उनको सब प्रकार का माल दिखाता हूँ। कही जाना पडे तो मै आप जाता हूँ। इससे मेरी शान में कोई कमी नही आती।"

ये सब बातें पूछ लेने के बाद उन मित्रो ने सोचा कि इतने बड़े व्यापारी का अधिक समय लेना ठीक नही। वे दूकान से निकलने के लिए तैयार हुए। पर स्वयं मॅरट बोले—"आपने मुझसे मेरा पूरा-पूरा वृत्तान्त नही पूछा। मेरे व्यसन और स्वभाव के सम्बन्ध में तो आपने कुछ पूछा ही नही।"

यह बात सुन वे कुछ सहम से गए। वे सोचने लगे कि ऐसे मनुष्य को व्यसन कैसे हो सकता है ? इनको दारू का व्यसन नही यह तो इनके चेहरे से ही पता लग जाता है। वे आप कह चुके हैं कि सवेरे जल्दी उठने और रात को दस बजे

वे याद कभी जागते न रहने का उनका अभ्यास है। इससे उनके समय पर काम करने की कल्पना की जा सकती है। उन्होने कहा है कि सिनेमा जाना ही हो तो वे अधिकतर दिन के खेल में ही जाते हे। इनको और क्या व्यसन हो सकता है? उनके मन में आया कि कही रेसेज और जुआ की बात तो इनको नही।

'क्या आप कभी पूना जाते हे ?"

"रेसेज़ के लिए न हाँ ? जाता हूँ पर केवल चौंसठ रुपये साथ लेकर। तीन रुपये बारह आने रेस-कोर्स का टिकिट, दाव लगाने के लिए आठ रुपये, एक आना चाय, एक आना केक और दो आने लौटने के लिए रेल-भाडा। साठ रुपये से ऊपर मै कभी नही लगाता।"

"और पैसे कभो गँवाए है या नही ? कभी-कभी कमाते भी होंगे ?"

"कभी कभी पैसे गँवाये भी जाते है, पर साठ से अधिक कभी नही। पैसे मिलते ही उनको जेब में डालकर तुरत लौट आता हूँ। पुन दाँव लगाने के पचडे में नही पडता। यदि मै बारबार दाँव पर रुपया लगाता तो 'खार' में मेरे दस-बारह मकान आज मेरे पास कभी न रहते। उनसे मुझे सहस्र डेढ सहस्र रुपया मासिक किराया आता है। उनमें से यदि एक-आध वार साठ रुपये उडा दिए तो उससे मेरा क्या बिगडता है ?"

मॅरट महाशय का यह स्पष्ट कथन सुन उन मित्रो को आश्चर्य हुआ। अन्त में वे उनसे आज्ञा लेकर उठने लगे तो

उन्होंने कहा—"आप कल्पना नहीं कर सकते कि मुझे रेसेज की कितनी लत है। अब मैं रेस के अपने दो घोड़े भी लेने वाला हूँ।"

"किसके लिए? क्या कोई विज्ञापन करने की युक्ति निकाली है?"

"आपने ठीक कहा। एक घोड़े का नाम रखूँगा मॅरट और दूसरे का 'वाटरप्रूफ'। बस, फिर वे चाहे जीतें या न जीतें, मेरा विज्ञापन खूब होता रहेगा।"

"भाई यह तो आपकी कल्पना बहुत उत्तम है।"

इतना कहकर वे मित्र चलने लगे और इतना अधिक समय लेने के लिए क्षमा प्रार्थना का शिष्टाचार करते हुए उनमें से एक ने कहा—

"आपने हम जैसे लोगों के साथ इस प्रकार खुलकर बातें कीं, इसके लिए हम आपके बहुत आभारी हैं। हमने आपका बहुत समय तो नहीं लिया?"

पर मॅरट बड़े पक्के व्यवहार कुशल थे। वे बोले—"इसमें आभार कैसा? आप हमारे ग्राहक हैं।

"मैं आपसे मीठा बोला, अच्छा व्यवहार किया, तो फिर हमें और क्या चाहिए? आप अपने मित्रों में हमारी दूकान का विज्ञापन करेंगे, आप अवश्य करेंगे, इसमें कुछ सन्देह ही नहीं इससे जो समय गया उससे ड्योढ़ गुना अधिक लाभ होगा।

"अच्छा, कोई ओवर-कोट, होल्डाल या सूटकेस चाहिए आवश्यकता होने पर आप आयेंगे तो सही, अच्छा ठीक है।"

मॅरट कोई अग्रेज नही वरन् एक सीधे-साधे पजाबी सज्जन है। किसी विशिष्ट तत्व का अवलम्बन करके अपने स्वत. के परिश्रम से कितने बडे व्यापारी बन गए हैं। वह देखने की बात है। सभी व्यापारी ऐसी समझदारी से काम लें तो कितनी मौज-बहार हो।

टी० टी० कृष्णमाचारी

(He was a member of the Indian Financial Delegation that visited London in 1948)
सन् १९४८ में जो भारतीय वित्त—शिष्ट मण्डल (Indian Financial Delegation) लन्दन गया था, उसके भी आप सदस्य थे। श्री टी. टी. कृष्णमाचारी का जन्म २६ नवम्बर १८९९ को हुआ। आपने मद्रास के क्रिश्चियन कालेज में शिक्षा प्राप्त की। सन् १९२१ में आप व्यापार में प्रविष्ट हुए। कांग्रेसी मंत्रि-मण्डल के समय सन् १९३७ में आपने मद्रास असेम्बली में वैधानिक तथा अन्य कार्यों में बड़ा महत्त्वपूर्ण योग दिया। मद्रास के भारतीय व्यापारिक संगठनों में आप विशेष अभिरुचि रखते रहे और प्रान्त के व्यापारिक जीवन को समुन्नत और समृद्ध बनाने में आप निरन्तर प्रयत्नशील रहे। अक्टूबर १९४२ के उप चुनाव में आप सेंट्रल असेम्बली के लिए निर्वाचित हुए। सन् १९४६-४७ में आप मद्रास महाजन सभा के अध्यक्ष चुन लिये गये। सन् १९४६ में आप भारतीय संविधान सभा के सदस्य निर्वाचित हुए। १३ मई सन् १९५२ से आप केन्द्रीय वाणिज्य एवं उद्योग विभाग के मन्त्री पद को सुशोभित कर रहे हैं।

देश की औद्योगिक और आर्थिक स्थिति पर आपके विचारों की बड़ी कदर की जाती है। केन्द्रीय उद्योग परामर्श

परिषद् के छठे सम्मेलन में भाषण देते हुए हाल ही में आपने कहा था कि यह कभी न समझना चाहिए कि सरकारी और निजी उद्योग दोनो एक दूसरे से बिल्कुल पृथक् हैं और सरकार निजी क्षेत्रों में हाथ डाल ही नही सकती या वह सरकारी क्षेत्र में निजी उद्योगों से सहयोग और सहायता की मांग नहीं कर सकती। सन् १९४८ में निर्धारित उद्योग नीति मोटे तौर पर अब भी लागू हैं। केवल उसके विभिन्न पहलुओं पर जोर दिया जा रहा हैं। भारत में गरीबी के विरुद्ध अभी युद्ध शुरू ही हुआ है। इसमें गैर सरकारी अर्थात निजी उद्योगो को सरकार की सहायता करनी चाहिए। सरकार यह नही चाहती कि केवल राष्ट्रीयकरण के लिए ही उद्योगो का राष्ट्रीयकरण किया जाय। सरकार का प्रमुख उद्देश्य देश की गरीबी को दूर करना है।

युद्ध के बाद इतना उत्पादन कभी नही हुआ जितना १९५५ की पहली तिमाही में हुआ है। फिर भी मुद्रा स्फीति नही हुई। साथ ही चीजों की खपत भी बढी है। भारी बिजली-उद्योगो, हल्के बिजली-उद्योगों, औषधियो और भेषज द्रव्यो, नकली रेशम-उद्योग, ऊनी वस्त्र उद्योग तथा भारी रासायनिक पदार्थों के लिए विकास परिषदें स्थापित हो चुकी हैं और अब उनकी सख्या १० हैं। इन परिषदो का मुख्य कार्य उन उद्योगों के लिए पचवर्षीय योजना बनाने में सहायता करना है, जिनसे वे सम्बन्धित है। हमारे उद्योग ठीक मार्ग पर चल रहे हैं और उनका विकास ठीक ढंग से हो रहा है।

युद्ध ग्रादि के समय उत्पादन बहुत बढ जाता है पर उत्पादन के साथ-साथ कीमतें भी बहुत बढती है ग्रौर उपभोक्ता को बडी कठिनाई का सामना करना पडता है। यह सन्तोष की बात है कि १६५५ की पहली तिमाही में उत्पादन ग्रत्यधिक बढ जाने पर भी हमारे यहाँ कीमतें बढने के बजाय नीचे गिरी है। जनवरी १६५४ में मूल्यो का सूचक ग्रङ्क ३६५'८ था जो दिसम्बर १६५४ में गिर कर ३६७'८ ग्रौर मई १६५५ में ३४२'० रह गया।

हमारा देश धीरे धीरे समृद्ध होता जा रहा है। इसका प्रमाण यह है कि पहले जो चीजें फालतू बच जाती थी वे ग्रब देश में खपने लगी है। कुछ ही वर्ष पहले हमारे यहाँ चीनी कि उत्पादन को देखते हुए खपत बहुत कम थी, पर ग्राज चीनी का उत्पादन बढ जाने पर भी उसकी कमी मालूम पडती है ग्रौर चीनी के नये कारखाने चालू करने के लिए घडाघड लाइसेंस दिये जा रहे है। १६५२-५३ में बाइसिकिल निर्माताग्रो का यह कहना था कि बाहर से साइकिलें न मँगाई जायें, *वरना उनका धन्धा न चलेगा*, परन्तु ग्राज साइकिलो की माँग इतनी बढ गई है कि कारखानो की उत्पादन-क्षमता बढाने की बात सोची जा रही है, ग्रौर भी कई चीजो के उत्पादन में वृद्धि के साथ ही साथ खपत में भी वृद्धि हुई है।

हमारी ग्रर्थ-व्यवस्था इसलिए ग्रौर भी सन्तोषजनक है कि यहाँ उपभोग्य वस्तुग्रो के साथ ही मशीनो ग्रौर यन्त्रो का निर्माण भी हो रहा है। कपडा बुनने वाली नये ढङ्ग की

मशीनें तैयार हो रही हैं। शीघ्र ही कपड़ा, जूट, सीमेंट, चीनी आदि अनेक उद्योगों के लिए आवश्यक भारी मशीनें और कल-पुर्जे आदि देश में ही तैयार होने लगेंगे।

जहाँ तक निजी उद्योगों का प्रश्न है, इनके समर्थकों और विरोधियों दोनों ने सरकारी उद्योग-नीति को ठीक-ठीक नहीं समझा है। संविधान के अनुच्छेद ३१ और ३१ (क) के संशोधन, कम्पनी अधिनियम के संशोधन और कर निर्धारण जांच समिति के प्रतिवेदन के भिन्न-भिन्न अर्थ लगाये जा रहे हैं, जिससे भ्रम और भी बढ़ गया है। कांग्रेस दल के आर्थिक उद्देश्य स्पष्ट किये जा चुके हैं। अवाडी प्रस्ताव में आर्थिक नीति की जो रूप रेखा प्रस्तुत की गई है, वह कोई नई बात नहीं है।

सरकारी उद्योगों के विकास का दायित्व तो सरकार पर है ही, सरकारी क्षेत्र में नये कारखाने खोलना भी उसी का काम है। बाकी सारा क्षेत्र, १९४८ की तरह, निजी उद्योगों के विकास के लिए खुला है। पर इसका यह अर्थ नहीं है कि निजी उद्योगों के क्षेत्र में सरकार का कोई दखल नहीं। यदि व्यापारी और उद्योगपति समाज की आवश्यकता को नहीं समझते और ऐसे धंधों को शुरू नहीं करते जिनकी देश को आवश्यकता है तो इस क्षेत्र में भी सरकार को हाथ डालना पड़ेगा। हम इस कारण अपनी समूची योजना में कोई बाधा नहीं सहन कर सकते कि किसी खास सामग्री को बनाने के लिए और कोई तैयार नहीं होता। महत्वपूर्ण उद्योगों के बारे में तो हम किसी तरह भी ऐसा नहीं होने देना चाहते। हम

यह नही चाहते कि धन-दौलत मुट्ठी भर लोगो के ही हाथ में इकट्ठी हो जाय । कुछ इने-गिने देश ही ऐसे हैं, जहां गरीब और अमीर में इतना अधिक अन्तर है । सरकार का कर्त्तव्य है कि वह न केवल उत्पादन बढाये बल्कि उपलब्ध सम्पत्ति का बंटवारा भी समान रूप से करे ।

सामाजिक उद्देश्य के अतिरिक्त हमारे साधन बहुत सीमित और योजना बहुत विशाल होने के कारण हमें अपने साधनो का उपयोग बडी सावधानी से करना होगा । एक और प्रश्न प्राय पूछा जाता है कि क्या १९४८ की नीति-घोषणा में वर्णित पहली या दूसरी श्रेणी के वर्तमान उद्योगो का भी सरकार राष्ट्रीयकरण करना चाहती है ? वस्तु स्थिति यह है कि निजी उद्योगो के अलावा अभी इतना क्षेत्र खाली पड़ा है जहां सरकार अपने साधनो का सदुपयोग कर सकती है और राष्ट्र की अर्थ व्यवस्था को लाभ पहुंचा सकती है ।

सविधान के चौथे सशोधन से इस आधारभूत नीति में कोई परिवर्तन नही होगा । इसका उपयोग केवल विशेष आवश्यकता पडने पर ही होगा । नि.सन्देह यह आवश्यकता निजी उद्योग-धन्धो को अपने अधिकार में लेने की भी हो सकती है और हो सकता है कि इसका मुआवजा पुरानी दर पर न दिया जाय । यह निश्चित है कि मुआवजा किसी भी हालत में नामुनासिब नही होगा । अपनी योजनाओं के लिए हमें कई क्षेत्रो में विदेशी पूजी की भी आवश्यकता बनी रहेगी । यह स्वाभाविक है कि विदेशी पूजीपतियो को विश्वास होना चाहिए

कि उसकी सम्पत्ति के बदले में उचित मुआवजा अवश्य मिलेगा। सरकार पहले विदेशियों को भारत में पूंजी लगाने के लिए प्रेरित करने और पीछे जब्त करने की कोई छिपी इच्छा अपने मन में नहीं रखती।

बहुत से क्षेत्रों में निजी उद्योगों का विकास करना हमारी योजना का आवश्यक अंग है। इसके लिए उद्योग—सचालकों को आश्वासन रखना चाहिए कि यदि राज्य उनके कल कारखाने अपने हाथ में लेगा तो उन्हें उसका उचित मुआवजा अवश्य मिलेगा। ब्रिटेन में मजदूर सरकार ने भी इसी बात का ध्यान रखा था कि जिन निजी उद्योग-धंधों को हाथ नहीं लगाया गया वहाँ उद्योगपतियों को इस बात के लिए बराबर प्रोत्साहन दिया गया कि वे अपने कल कारखानों को बिल्कुल ठीकठाक रखें, यह नहीं कि राष्ट्रीयकरण के डर से उन्हें *बिगड़ जाने दें क्योंकि इससे तो अंत में राष्ट्र की ही हानि* होती है। हाँ, यह अवश्य है कि पैसे वालों को बार बार सरकार से निश्चित आश्वासन की माँग नहीं करनी चाहिए। उनकी सम्पत्ति के बारे में एक ही आश्वासन हो सकता है और वह यह कि देश की अर्थ-व्यवस्था को स्थिर रखने के लिए सुसंगठित सरकार बनी रहेगी। उद्योग (विकास और नियम) अधिनियम १९५१ के अनुसार केन्द्रीय सरकार ने दो और विकास परिषदें स्थापित की हैं—एक तो नकली रेशम और नकली रेशम के धागे के उद्योग के लिए और दूसरी ऊनी कपड़े के उद्योग के लिए। ऊनी कपड़े में ऊन का धागा, मोजा, स्वेटर, कालीन आदि भी शामिल हैं।

परिषदें उत्पादन के लक्ष्य निर्धारित करेंगी, उद्योगों की प्रगति का समीक्षण करेंगी, कार्य-कुशलता बढ़ाने के उपाय सुझावेंगी, माल बेचने की व्यवस्था करेंगी और मजदूरी के लिए अधिक सुविधाएँ प्रदान करने के उपाय बतायेंगी।

श्री टी. टी कृष्णमाचारी के जो विचार ऊपर प्रकट किये गये हैं, उनसे स्पष्ट है कि मन्त्री महोदय का प्रमुख लक्ष्य भारतीय जनता को आर्थिक दृष्टि से सुखी और समृद्ध बनाना है। काग्रेस ने समाजवादी समाज के जिस ढाँचे को स्वीकार किया है, उसका भी उद्देश्य यही है कि हमारे विशाल राष्ट्र का जन जन समृद्ध बने, उसका जीवन का मान ऊँचा हो। भारत को अनिवार्यत एसी आर्थिक व्यवस्था स्वीकृत करनी होगी जिसमें मुख्य-मुख्य स्थलो पर नियन्त्रण हो ताकि विकास का काम अव्यवस्थित रूप से न हो और देश की आर्थिक प्रगति में कोई बाधा न पड़े। दूसरी पचवर्षीय योजना में सरकारी उद्योगों में लगायी जाने वाली १,४०० करोड रुपये की पूँजी पूँजीगत-वस्तुओं के उत्पादन पर खर्च की जायगी जिनके द्वारा अन्य उपयोग की वस्तुएँ तैयार हो सकेंगी। इसमें भी महत्त्व की बात यह है कि यह समस्त धन-राशि मशीनो और यन्त्र आदि पूँजीगत वस्तुओं के निर्माण पर ही खर्च की जायगी। दूसरे शब्दो में कहा जा सकता है कि हम देश के औद्योगीकरण की नीव डाल रहे हैं जैसा कि १८ वी शताब्दि में यूरोप में हुआ था। सरकार का लक्ष्य १३ लाख टन के मुकाबले ५० लाख टन इस्पात, ४ हजार टन

के मुकाबले ४० हजार टन अलमुनियम और वर्तमान उत्पादन से तीन गुने भारी, रासायनिक पदार्थ बनाने का है।

ससार में तीन शताब्दियों में जो प्रगति हुई है, हमें उतनी १५-२० वर्षों में ही करनी है, अन्यथा हम ससार की दौड में पीछे रह जायेंगे, पर हम अपने कल-कारखानो और औद्योगिक सगठनो का ऐसी दूरदर्शिता से विकास करेंगे जिससे यूरोप की औद्योगिक क्रान्ति के बाद की-सी दुरवस्था और अशान्ति हमारे देश में पैदा न हो। भारतीय कारीगर बहुत कुशल होता है और नयो नयी बातें सीखने को उद्यत रहता है, अत हमें अधिकतम कुशलता की ओर इस ढग से बढना होगा कि देश में किसी प्रकार की अव्यवस्था उत्पन्न न हो। देश के कई भागो मे ऐसा ही हुआ है। साइकिलो और सिलाई की मशीनो क पुर्जे बनाने का उद्योग इसका उदाहरण है और अथ शास्त्र तथा वाणिज्य शास्त्र के विद्यार्थी के लिए यह अध्ययन-योग्य विषय है।

यदि हम यूरोप की तरह उद्योग व्यापार में बिलकुल हस्तक्षेप न करने की नीति अपनाएं तो सम्भव है, माल बहुत बनने लगे। पर खुली छूट देने से एसा हो सकेगा, इसमें भी सन्देह है क्योकि हमारे देश में लोगो के पास इतना धन नही है जिससे बडे-बडे उद्योग चल सकें और यदि कोई योजनाबद्ध कार्यक्रम न हुआ तो लोग उपभोग्य वस्तुओ के उद्योगों में ही पैसा लगायेंगे जिसमें नफा अधिक मिलता है। इस प्रकार पूँजीगत सामान के उद्योगो में पैसा लगाने में किसी को कोई

आकर्षण नहीं रहेगा। इसी डर को दूर करने के लिए नियन्त्रण आवश्यक है।

गजट आफ इंडिया के १३ अगस्त १९५५ के अंक में भारत सरकार का वह प्रस्ताव प्रकाशित हुआ है जो उसने इन्जीनियरी इस्पात रेती उद्योग के विषय में टटकर कमीशन की रिपोर्ट पर स्वीकृत किया है। सरकार ने कमीशन की यह मुख्य सिफारिश स्वीकार करली है कि इस उद्योग को ३१ दिसम्बर १९५७ तक संरक्षण प्राप्त रहे। अपने प्रस्ताव में सरकार ने उत्पादनों की किस्म सुधारने विषयक कमीशन की सिफारिशों की ओर ध्यान दिये जाने पर भी जोर दिया है।

ऊपर के वर्णन को पढ़ कर यह न समझ लिया जाय कि भारतीय सरकार ग्राम उद्योगों के विकास के प्रति जागरूक और सचेष्ट नहीं है। २७ जुलाई १९५५ की एक सूचना के अनुसार भारत सरकार ने खादी, ग्राम उद्योगों और दस्तकारियों की उन्नति के लिए अनेक अनुदान और ऋण स्वीकृत किये हैं।

बिहार खादी समिति, मुजफ्फरपुर, गांधी आश्रम, मेरठ और बम्बई राज्य ग्राम उद्योग मंडल को खादी उद्योग के विकास के लिए क्रमशः २० लाख, १५ लाख और ६ लाख रुपये के ऋण स्वीकार दिये गये हैं। ये ऋण अखिल भारतीय खादी और ग्राम उद्योग मंडल द्वारा ६० लाख रुपये की उस रकम में से दिये जायेंगे जो उसे पहले ही दी जा चुकी है। प्रशिक्षण-योजना के सम्बन्ध में नासिक विद्यालय के

लिये साज-सामान खरीदने के लिए ३५,००० रु० का व्यय स्वीकार किया गया है।

ग्राम-तेल-उद्योग के विकास के लिए भोपाल को ६,६७५ रु० का अनुदान और ६,५०० रु० का ऋण दिया गया है। इसके अलावा ग्राम चमडा-उद्योग के विकास के लिए ४,८२० रु० का ऋण और ४,२८० रु० का अनुदान और दिया गया है।

अखिल भारतीय दस्तकारी मण्डल की सिफारिश पर, हैदराबाद को, पैठन उद्योग के विकास के लिए १६,१२५ रु० का ऋण देना स्वीकार किया गया है।

भारत सरकार ने छोटे उद्योगो के विकास के लिए पजाब और आन्ध्र राज्य को ३२,६६,७१३ रु० का और अधिक ऋण तथा अनुदान देना स्वीकार किया है।

उद्योग सम्बन्धी सरकारी सहायता अधिनियम तथा इसी प्रकार के अन्य नियमो के अन्तर्गत छोटे उद्योगों को ऋण देने के लिए पजाब राज्य को २८,५०,००० रु० का ऋण दिया गया है।

आन्ध्र राज्य को अनेक छोटे उद्योगो के विकास के लिए ३,७६,०७३ रु० का अनुदान और ७८,६४० रु० का ऋण दिया गया है। इसमें से १,२१,५०० रु० का अनुदान और २४,००० रु० का ऋण बढईगीरी के लिए ६ प्रशिक्षण तथा उत्पादन केन्द्र खोलने और उन्हें चालू पूंजी लगाने में सहायता देने के लिए है। इसी तरह १,००,४०० रु० का अनुदान और १६,२०० रु० का ऋण लोहारी के ६ प्रशिक्षण तथा

उत्पादन केन्द्र खोलने और उन्हें चालू पूँजी लगाने में सहायता देने के लिए है।

कांच के वैज्ञानिक यन्त्रों के बनाने के लिए ३६,७००० रु० का अनुदान और १०,००० रु० का ऋण दिया गया है। अनकपल्ली और विजयनगरम् में पत्थर और मिट्टी के बर्तन बनाने के प्रशिक्षण तथा उत्पादन गृह खोलने के लिए प्रत्येक को २३,५२५ रु० का अनुदान तथा ३६०० रु० का ऋण दिया गया है। क्रेयोन तथा प्लास्टर से अन्य चीजें बनाने का प्रशिक्षण तथा उत्पादन—गृह खोलने के लिए १४,६४० रु० का ऋण तथा ११,६७३ रु० का अनुदान स्वीकृत हुआ है। राजमहेन्द्री के चीनी मिट्टी के कारखाने में एक नयी और बड़ी भट्टी लगाने तथा उसके केन्द्र के पुनर्गठन के लिए १३,७५० रु० का अनुदान दिया गया है।

प्लास्टिक के बने माल का निर्यात बढ़ाने के लिए बम्बई में एक परिषद् की स्थापना की गई है।

खानों के मुख्य निरीक्षक द्वारा प्रकाशित आँकड़ों के अनुसार मई १९५५ में कुल ३,५१,१६० टन कच्चा लोहा निकाला गया, जब कि इससे पहले महीने में ३,८१,१२८ टन निकाला गया था।

कोयले की खानों में तथा अन्य स्थानों पर कोक बनाने वाले कारखानों ने इस महीने ३,४२,१०४ टन कोक बनाया और १,४६,७६१ टन कारखाने से बाहर भेजा।

ऊपर जो आँकड़े दिये गये हैं उनसे पता चलता है कि हमारा देश उद्योग और वाणिज्य के क्षेत्र में क्रमशः आगे बढ़ रहा है। आशा की जाती है कि केन्द्रीय उद्योग और वाणिज्य के सुयोग्य मंत्री श्री टी. टी. कृष्णमाचारी के मन्त्रित्व-काल में भारत द्रुत-गति से उन्नति के पथ पर अग्रसर होता चला जायगा और शीघ्र ही वह दिन आयेगा जब हमारे देश का नाम भी सुविकसित औद्योगिक राष्ट्रों के साथ सम्मानपूर्वक लिया जायगा। *

---

* देखिये 'उद्योग-व्यापार पत्रिका' सितम्बर १९५५

जे० सी० कुमारप्पा

श्री जे० सी० कुमारप्पा का जन्म ४ जनवरी सन् १८९२ ई० को हुआ। आपने पहले लन्दन और तत्पश्चात् बम्बई में इन्कारपोरेटेड अकाउण्टेंट के रूप में काम किया। मई १९३० से फर्वरी १९३१ तक आप की ही देख-रेख में महात्माजी का सुप्रसिद्ध साप्ताहिक 'यंग इण्डिया' निकलता रहा। ग्रेट ब्रिटेन और भारत के बीच वित्त सम्बन्धी मामलों को लेकर जो कांग्रेस सेलेक्ट कमेटी बनी थी, उसके संयोजक आप ही थे। उसका प्रतिवेदन (Report) भी आप ही ने प्रस्तुत किया था। सन् १९३४ में आप बिहार सेंट्रल रिलीफ कमेटी के आन्तरिक हिसाब-परीक्षक रहे। (The Nation's Voice) नामक पत्र के संयुक्त सम्पादक के रूप में भी आपने काम किया। मध्य-प्रदेशीय सरकार की इण्डस्ट्रियल सर्वे कमेटी के आप अध्यक्ष रहे। अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ का आपने संगठन किया और उसके मन्त्री के रूप में काम करते हुए आपने बड़ी ख्याति प्राप्त की। आपने कोलम्बिया से एम० ए० और बी० एस सी० किया।

गांधीवादी अर्थशास्त्र के विचारकों में श्री जे०सी० कुमारप्पा का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। आधुनिक शिक्षा-पद्धति के अनुसार शिक्षित अर्थशास्त्री जिस प्रकार विचार करते हैं, उस तरह परम्पराभुक्त विचार-धारा के आप कायल नहीं

है। आपके विचारो मे मौलिकता है। साधारणत लोग यह समझते है कि गाधीवादी विचारक उद्योग-धन्धो मे मशीनो के प्रयोग का समर्थन नही करते किन्तु श्री कुमारप्पा की मान्यता है कि उद्योग-धन्धो में मशीनो के लिए स्थान अवश्य है किन्तु उसकी अपनी सीमाएँ है। जहाँ एक स्टैण्डर्ड का माल तैयार हो और मजदूरो से फौजी ढग से काम लेना हो, वहाँ बडे पैमाने पर माल तैयार करने वाली मशीनो का इस्तैमाल किया जा सकता है। जब किसी खास नाप की चीजें तैयार करने वाले औजार बनाना हो और निर्दिष्ट स्टैंडर्ड की पैदावार अनिवार्य हो तो उन्हें मशीनो के जरिये तैयार करना जरूरी हो जाता है। लेकिन यह आवश्यक नही है कि प्रति दिन काम में आने वाली चीजें एक ही तरह की और एक ही स्टैंडर्ड की बनाई जायें। सीग का कघा हाथ से बनाया जा सकता है, लेकिन हाथ से बने हुए कोई भी दो कघे एक नाप के नही होते। इस तरह की वस्तुओ का एक स्टैंडर्ड निर्धारित करना कोई अर्थ नही रखता। इसलिए प्लास्टिक के कघे बनाने की जरूरत नही है। इसी तरह सर्वसाधारण के काम में आने वाली और बहुत सी वस्तुएँ ऐसी है जिनका स्टैंडर्ड कायम करना जरूरी नही है। ऐसे मामलो में गाँवो में छोटे छोटे उद्योग धन्धे ही सफल हो सकते है। जब किसी आदमी के लिए जूतो की जोडी तैयार करनी हो तो दोनो जूते उसके पाँवो के ठीक नाप के बनाने चाहिएँ—यहाँ तक कि उसके पाँवो के किसी ऐब का भी खयाल रखना होगा। किसी व्यक्ति-विशेष के पाँवो के जूते बनाने का यह काम वैज्ञानिक कहा जायगा। यह मोची को अपनी सूझ-

सूझ और कारीगरी का इस्तेमाल करने में सहायता पहुँचायेगा और उसकी सामयता को बढ़ायेगा। लेकिन बड़ी संख्या में तैयार किये जाने वाले एक स्टैण्डर्ड के जूते पूरी तरह 'वैज्ञानिक' नहीं कहे जा सकते, क्योंकि वे किसी खास आदमी के पाँवों में ठीक बैठने की दृष्टि से नहीं बनाये जाते। इसलिए मोची के काम के मुकाबले बड़े पैमाने पर जूते तैयार करने का यह काम भी अवैज्ञानिक है और इसीलिए प्रगति के विरुद्ध है।

श्री कुमारप्पा के शब्दों में हमने कारखानों में बड़े पैमाने पर तैयार किये जाने वाले स्टैण्डर्ड माल के नतीजे देखे हैं। इसके लिए बड़ी मिकदार में कच्चे माल की जरूरत होती है और दुनिया के हर कोने से उसे इकट्ठा करना होता है। तैयार माल के लिए निश्चित बाजारों का होना जरूरी है और बाजारों के लिए समन्दरी रास्तों का साफ और सही सलामत होना जरूरी है। इन्हीं शर्तों ने पिछले दो विश्व युद्धों को जन्म दिया, जिन्होंने दुनिया में तबाही मचा दी। इन जंगों के दरम्यान बहुत से इन्सान और उनकी बनाई हुई आला दर्जे की चीजें बरबाद हो गईं। कोई भी जंग सचमुच तरक्की के खिलाफ होती है। वह इन्सान को जंगली बना देती है और इसलिए गैर-सायन्सी कही जा सकती है। चूंकि ये विश्वयुद्ध हमारी इन्सानी जरूरतों को पूरा करने के लिए किये जाने वाले कामों के ही नतीजे हैं, इसलिए यह साफ जाहिर है कि हमारे काम गैर-सायन्सी और तरक्की के खिलाफ हैं।

इसलिए जब हम अपनी जरूरतों को पूरा करने वाली चीजें तैयार करने की योजना बनावें तो हमें सावधानी से

माय ज्यादा से ज्यादा माय-नी तरीके और तरक्की की तरफ ले जाने के रास्ते ही चुनने चाहिए। हमें यह याद रखना चाहिए कि न तो बड़े पैमाने पर चीजों की पैदावार तरक्की का चिह्न है और न बरबादी सायन्स की निशानी है। जल्द हासिल किये जाने वाले नतीजे तहजीब और सभ्यता को जन्म नहीं देते। कुदरत कुछ ऐसे पोशीदा ढग से काम करती है कि हम उसे समझ नहीं सकते। वह अपने काम में पूरा समय लेती है। जल्दबाजी करने वाला कोई भी आदमी न तो तरक्की कर सकता है और न सायन्सी बन सकता है। हमें जिन्दगी में धीरज और सतुलन रखने की जरूरत है। हम गांवों में फैले हुए उद्योग-धन्धों के जरिये अपनी जरूरतों को पूरा करके ही इसे हासिल कर सकते हैं।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, छोटे पैमाने पर माल तैयार करने वाले गांवों के उद्योग के लिए जरूरी औजार व मशीनें तैयार करने और सल्फरिक एसिड, फौलाद वगैरा बुनियादी कच्चा माल मुहैया करने में बड़े-बड़े कारखानों का इस्तेमाल बुरा होने पर भी जरूरी हो जाता है। आमद रफ्त और माल ले जाने के जरियों, जनता को फायदा पहुँचाने वाले पानी और बिजली के उद्योगों में कुदरती 'मोनोपोली' होने से वे एक केन्द्री ढग पर चलाये जा सकते हैं। बड़े-बड़े कारखानों की हद यहीं तक है। इससे आगे उन्हें बढाया गया तो वे मनुष्य जाति को तबाह और बरबाद कर देंगे। लेकिन इसका फैसला कर सकने के लिए बड़ी सावधानी और दूरन्देशी की जरूरत होती है। जो भी हो, हम अपनी रोजमर्रा की जरूरतों

बढता है और उसके परिणामस्वरूप ४० करोड जनता यदि कष्ट सहती है तो हमें ऐसी औद्योगिक उन्नति से कोई सरोकार नही। अगर तरक्की होनी है तो उसका फायदा सभी लोग उठावें, सिर्फ कुछ चुने हुए आदमी ही नही। जब हम तरक्की की बात करें तो देश की आम जनता को ध्यान में रख कर ही हमें ऐसा करना चाहिए।

श्री कुमारप्पा यह मानते है कि उद्योगो के विकेन्द्रीकरण से ही सुख शान्ति की समस्या हल हो सकती है। उत्पादन के केन्द्रित ढगो की व्यवस्था ही इस बात पर कायम है कि कच्चे माल की उपज की जगहो और बने माल के निकास के बाजारो पर पूरा कब्जा रहे। इन दोनो जगहो में माल बनाने वाले को उपभोक्ता और कच्चा माल बेचने वाले पर धौंस जमानी पडती है और हिंसा का सहारा लेना पडता है। यही कारण है कि इस प्रकार के उत्पादन में लडाई एक विशेष अग बन गई है। और पिछले दो महायुद्धो से जो सत्यानाश हुआ वह उस उत्पादन से कही ज्यादा हुआ जो मशीनों ने अमन-चैन के समय किया था।

अमेरिका में लोग आलू, काफी वगैरा चीजो को इसलिए बरबाद कर देते है कि उनके भाव गिरने न पायें। अमेरिका के इस तरीके की निन्दा करते हुए भी हम अपने यहाँ शक्कर की मिलें बढाते जाते है जो बिल्कुल यही काम करती है। शक्कर में कोयले जैसी खालिस ताकत होती है। उसमें गिजाई माद्दा नही होता। शक्कर की मिलों के मालिक नफा कमाने के लिए गन्ने

के रस से सारा पोषक तत्व अलग करके ही डालडा तैयार करते हैं।

वनस्पति घी को प्रोत्साहन देना भी विनाश को निमन्त्रण देना है। तेलियों द्वारा तैयार किये गये सामग्री तेल के मुकाबले वनस्पति घी पचन में भारी और पोषण की दृष्टि से बेकार साबित हो चुका है। शुद्ध घी की जगह वनस्पति की मांग ने डेयरी उद्योग को बड़ा धक्का पहुँचाया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि निरामिष भोजन करने वालों को जो प्राणिज प्रोटीन मिलना नितान्त आवश्यक है, वह नहीं मिल पाता।

जहाँ तक योजनाओं का सम्बन्ध है, श्री कुमारप्पा स्पष्टतः यह मान कर चलते हैं कि योजनाएँ हमारे देश की आवश्यकताओं को लक्ष्य में रख कर बनाई जानी चाहिएँ। योजनाओं के सम्बन्ध में हम अमेरिका या इंग्लैंड का अन्धानुकरण नहीं कर सकते। हमारे देश में सामान्य व्यक्ति को लक्ष्य में रख कर योजनाओं का निर्माण होना चाहिए। यदि हमने योजनाओं द्वारा देश की भौतिक सम्पत्ति में वृद्धि भी कर ली किन्तु उससे सामान्य जनता का हित न हुआ तो ऐसी योजनाओं का कोई अर्थ नहीं रह जाता। यह भली भाँति समझ लेना चाहिए कि देश की भौतिक सम्पत्ति में वृद्धि का अर्थ यह कभी नहीं होता कि उससे सामान्य जनता की स्थिति भी अनिवार्यतः सुधर जायगी। हमारे देश के निर्धन व्यक्तियों का भोजन, वस्त्र और रहने को मकान मिले तथा आज जिनको रोजगार नहीं मिल रहा है, उनको रोजगार मिले, इस उद्देश्य को

लेकर नीव से निर्माण करना चाहिए, नीचे से तरक्की करनी चाहिए। कुटीर-उद्योगो को प्रोत्साहन देने का सबसे बडा लाभ यह है कि उससे देश की निर्धन जनता को रोजगार मिलता है।

देश म जो कृषि-कालेज खोले जाते है उनके सम्बन्ध मे भी श्री कुमारप्पा का कथन है कि ऐसी सस्थाएँ ग्रामीण प्रदेशो मे खोली जानी चाहिएँ जहाँ का वातावरण कृषि के अनुरूप हो। ऐसे कालेजो को भी किसानो का जीवन व्यतीत करना चाहिए, उन्हें स्वय खेती करनी चाहिए और दूसरो के सामने आदर्श रखना चाहिए। इस प्रकार की शिक्षा का परिणाम यह होगा कि छात्र नौकरी तलाश नही करते फिरेंगे, कृषि करने मे वे किसी प्रकार की हीन-भावना का अनुभव नही करेंगे।

डा० अमरनाथ झा के हाथ सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक आइन्स्टीन ने यह चेतावनी भिजवाई कि भारत यदि ट्रैक्टरो आदि का प्रयोग करने लगा तो उससे जमीन की उर्वरा-शक्ति बहुत कम हो जायगी जिससे आगे चल कर देश को भारी विपत्ति का सामना करना पडेगा। श्री कुमारप्पा कहते हैं कि प्रो० आइन्स्टीन के पहले भी बहुत से विशेषज्ञो ने यही बात कही थी किन्तु हमारा देश तो ऐसे मामलो में एक शताब्दि पीछे रहता है।

महात्मा गाधी ने समय-समय पर देश की अर्थ-नीति के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये हैं। श्री कुमरप्पा भी, जैसा पहले कहा जा चुका है, गाधीवादी विचारक हैं। एक

दृष्टि से देखा जाय तो उन्होंने गाधीवादी अर्थ-शास्त्र का व्याकरण प्रस्तुत किया है ।

हमारे प्रधान मंत्री प० नेहरू समय समय पर समाजवादी समाजवाद के ढाँचे की व्याख्या करते हुए देखे जाते हैं । उन्होंने इसे 'सर्वोदयवाद' न कह कर समाजवादी समाज कहना ही अच्छा समझा है । बहुत से लोग समाजवादी ढाँचे और सर्वोदयवाद में कोई अतर नही करते किन्तु ऐसा जान पड़ता है कि हमारे देश मे आज एक प्रकार के नये गाधीवाद का सूत्रपात हो रहा है जिसके उन्नायक प० नेहरू है । प० नेहरू जब विचार करते है तब उनकी दृष्टि केवल भारत पर ही नही रहती, वे अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से भी विचार करते है । देखना यह है कि श्री कुमारप्पा के विचार हमारे देश में कहाँ तक कार्य रूप मे परिणत होते है किन्तु इसमे कोई सन्देह नहीं, कुमारप्पा आर्थिक समस्याओ की गहराई में प्रवेश करते है और जब वे अपने देश की अर्थ-नीति को गलत दिशा में प्रवृत्त होते हुए देखते है तो वे अपने विचारो को इस प्रखरता से प्रकट करते है कि दूसरो पर उसका प्रभाव पड़े बिना नही रहता ।
